चन्दामामा
मार्च १९८६

"रसना... दिन में तीन बार!"
कितना नारंगी-नारंगी!
Rasna
Rasna
soft drink
concentrate
Orange
रसना
भारत का सर्वाधिक बिकने वाला
सॉफ़्ट ड्रिन्क कॉन्सेन्ट्रेट
Mudra:A:PI:2949 HIN

मनोरंजन का खजाना डायमंड कॉमिक्स

नए डायमंड कामिक्स

चाचा चौधरी और साबू का हथौड़ा	4.00	पलटू और जादुई टोली	4.00
राजन इकबाल और अनोखा इंतकाम	4.00	छोटू लम्बू और अंजाना अपराध	4.00
अंकुर और लकड़ी का राजकुमार	4.00	पिकलू और मंगलू मुर्गा	4.00

क्या आप अंकुर बाल बुक क्लब के सदस्य बने हैं
यदि नहीं तो आज ही बनिये

और 3-D कॉमिक्स **मुफ्त** चिम्पू पिकलू और भोलू गोलू मुफ्त प्राप्त करें

सीमित स्टाक है अत: आज ही अंकुर बाल बुक के सदस्य बनें और हर माह पांच नए डायमंड कॉमिक्स घर बैठे प्राप्त करें।

अंकुर बाल बुक क्लब

डायमंड कामिक्स की बच्चों के लिये नई निराली अनुपम योजना अंकुर बाल बुक क्लब के सदस्य बनिये और हर माह घर बैठे, डायमंड कामिक्स, डाकव्यय की फ्री सुविधा के साथ प्राप्त करें।

डायमण्ड कामिक्स आज हर बच्चे की पहली पसन्द है। रंग बिरंगे चित्रों से भरपूर डायमण्ड कामिक्स हर बच्चा घर बैठे प्राप्त करना चाहता है। इस इच्छा के सैकड़ों पत्र हमें प्रति दिन प्राप्त होते हैं। नन्हें मुन्नों की माँग को ध्यान में रखकर हमने यह उपयोगी योजना शुरू करने का कार्यक्रम बनाया है। आपसे अनुरोध है इस योजना के स्वयं सदस्य बनें और अपने मित्रों को भी बनने की प्रेरणा दें:–

सदस्य बनने के लिए आपको क्या करना होगा :–

1. संलग्न कूपन पर अपना नाम व पता भर कर भेज दें। नाम व पता साफ-साफ लिखें ताकि पढ़ने में आसानी हो।
2. सदस्यता शुल्क तीन रुपये मनीआर्डर या डाक टिकट द्वारा कूपन के साथ भेजें। **सदस्यता शुल्क प्राप्त होने पर ही सदस्य बनाया जायेगा।**
1. हर माह पांच पुस्तकें एक साथ मंगवाने पर 2/- की विशेष छूट व डाक व्यय फ्री की सुविधा दी जायेगी। हर माह हम पांच पुस्तकें निर्धारित करेंगे यदि आपको वह पुस्तकें पसन्द न हों तो डायमण्ड कॉमिक्स व डायमण्ड पाकेट बुक्स की सूची में से कोई सी पांच पुस्तकें आप पसन्द करके मंगवा सकते हैं लेकिन कम से कम पांच पुस्तकें मंगवाना जरूरी है।
4. आपको हर माह Choice कार्ड भेजा जाएगा यदि आपको निर्धारित पुस्तकें पसन्द हैं तो वह कार्ड भरकर हमें न भेजें। यदि निर्धारित पुस्तकें पसन्द नहीं हैं तो अपनी पसन्द की कम से कम 7 पुस्तकों के नाम भेजें ताकि कोई पुस्तक उपलब्ध न होने की स्थिति में उनमें से 5 पुस्तकें आपको भेजी जा सकें।
5. इस योजना के अन्तर्गत हर माह की 20 तारीख को आपको वी.पी. भेजी जायेगी।

सदस्यता कूपन

मुझे अंकुर बाल बुक क्लब का सदस्य बना लें। सदस्यता शुल्क तीन रुपये मनीआर्डर/डाक टिकट से साथ भेजा जा रहा है। (सदस्यता शुल्क प्राप्त न होने की स्थिति में आपको सदस्यता नहीं दी जायेगी) मैंने नियमों को अच्छी तरह पढ़ लिया है। मैं हर माह वी.पी. छुड़ाने का संकल्प करता/करती हूँ।

नाम ....
पिता का नाम ....
पता ....
डाकखाना ....
जिला ....

सदस्यता शुल्क डाक टिकट से एडवांस आना जरूरी है।

डायमंड पाकेट बुक्स में

प्रकाशित तकनीकी पुस्तकें

एयरकंडीशन सर्विसिंग	10.00
रेकार्डप्लेयर सर्विसिंग	10.00
रेडियो सर्विसिंग	10.00
ट्रांजिस्टर सर्विसिंग	10.00
वीडियो सर्विसिंग	10.00
टेलीविजन सर्विसिंग	10.00
टेपरिकार्डर सर्विसिंग	10.00
कम्पलीट फोटोग्राफी	6.00

धार्मिक पुस्तकें

ऋग्वेद (सरल भाषा में)	10.00
सामवेद	10.00
यजुर्वेद	10.00
अथर्ववेद	10.00
शिवपुराण	10.00
विष्णुपुराण	10.00
देवी भागवत पुराण	10.00
भागवत पुराण	6.00
रामायण	6.00
महाभारत	6.00
श्री मद् भगवत गीता	7.00

डायमंड कॉमिक्स में
3-D कॉमिक्स
मनोरंजन की दुनिया में
एक नया प्रयोग

हर कॉमिक्स के साथ 3-D चमशा व 3-D पोस्टर मुफ्त प्राप्त करें।

डायमंड पाकेट बुक्स 2715, दरियागंज नई दिल्ली 110002

PUBLICO

देखिए, किस तरह आप 50 रुपये तक बचा सकते हैं केवल 20 हैण्डीप्लास्ट पट्टियोंवाला एक पैक खरीद कर.

बच्चों! जल्दी करो!

एक आकर्षक 'एशियन वाइल्डलाइफ़ एलबम' और १०० 'फोल्ड अप लैटर्स' पाओ-बिल्कुल मुफ़्त!

कोई प्रवेश-शुल्क नहीं है!
कोई वाक्य नहीं लिखना है!

5 FROOTS
ASIAN WILD LIFE ALBUM

बस आप हमें ५ फ्रूट्स के ४ खाली पैकेट १ रुपये की डाक-टिकटों के साथ लिफाफामें भेज दो...

...और बदले में हम आपको देंगे एक आकर्षक 'एशियन वाइल्डलाइफ़ एलबम'

इस एलबम को जानवरों की तस्वीरों से पूरा करो जो कि आपको हर ५ फ्रूट्स के पैकेट में मिलेंगी और तब आप पाएंगे १०० 'फोल्ड अप लैटर्स' जिन पर आपका नाम व पता छपा होगा! और हां, एलबम भी आपकी होगी!

आपकी मनपसंद ५ फ्रूट्स टाफियां
मज़ेदार स्वाद की मनचाही ऊंचाइयां

कोई प्रतियोगिता नहीं है!

रामकृष्ण फूड प्रॉडक्ट्स प्रा. लि.
शिवाजीनगर, पुणे-४११ ००५
फोन: ५४११६, ५६२५०.

चन्दामामा

संस्थापकः चक्रपाणि	संचालकः नागिरेड्डी

इस माह की बेताल कथा 'नागकन्या' वसुन्धरा की रचना है। 'आत्मरूप' शीर्षक कहानी में एक ऐसे चरित्र का विश्लेषण है जो स्वयं राजा से सम्मानित है और 'राजगुरु' जैसे पद पर आसीन होने पर भी जिसमें आत्मज्ञान और विनम्रता का अभाव है। अहंकार के कारण उसे एक घटना से गुज़रना पड़ता है जो उसकी आँखें खोल देती है और उसके आत्मरूप का उसे परिचय देती है।

अमर वाणी

स्थानभ्रष्टा न शोभंते दंताः केशा स्तथा नखाः ।
गजं चमर शार्दूलौ हित्वा यत्र गौरवम् ॥

[अपने स्थान से हटने के बाद दाँत, केश और नखों की शोभा नष्ट हो जाती है। किन्तु स्थान-च्युत होने के बाद हाथी दाँत, चमरमृग के केश और बाघनखों को आदर मिलता है।]

वर्षः ३८	मार्चः १९८६	अंकः ७

एक प्रतिः २-५०	वार्षिक चन्दाः ३०-००

चन्दामामा के संवाद

दूर का नक्षत्र-मंडल

अमरीका के खगोल शास्त्रियों ने पृथ्वी से क़रीब साढ़े चौदह लाख करोड़ प्रकाश-वर्षों के उस पार स्थित मंडल नक्षत्र-मंडल का अन्वेषण किया है। बार्कली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर बेरन स्पिनराड ने इस बात का उल्लेख करते हुए अपना विचार व्यक्त किया है कि पृथ्वी से सबसे दूर का नक्षत्र-मंडल यही है।

दयालु हाथी

आंध्र प्रदेश के जिला चित्तूर का एक किसान अपने ईख के खेत का पहरा दे रहा था। उसने अपने खेत में चर रहे एक हाथी को भैंसा समझ कर उस पर लाठी चला दी। हाथी ने क्रोधित होकर उसे सूंड में लपेट ऊपर उठा लिया। जब उस बूढ़े किसान ने हाथ जोड़कर हाथी को नमस्कार किया और यह प्रार्थना की कि वह उसकी रक्षा करे, तो हाथी ने कृपा करके उसे धीरे से नीचे उतार दिया और अपनी राह चला गया।

संगीत-प्रदर्शन में नया प्रतिमान

श्रीरंगम के मन्दिर के प्रांगण में संगीत-प्रदर्शन के कार्यक्रम में एक नया ऐतिहासिक प्रतिमान स्थापित हुआ है। हाल में ही नागै मुरलीधरन नाम के संगीतकार ने २५ घंटे तक लगातार वायलिन बजाया। मुरलीधरन के साथ मृदंग पर राजा रामन ने संगत की।

क्या आप जानते हैं ?

१. उत्तरी ध्रुव पर सर्वप्रथम कौन पहुँचा ?
२. दक्षिणी ध्रुव पर सर्वप्रथम कौन पहुँचा ?
३. न्यूज़ीलैंड की खोज किसने की ?
४. एक ही यात्रा में विश्व की परिक्रमा करनेवाला सर्वप्रथम अंग्रेज़ नाविक कौन है ?
५. अफ्रीका की यात्रा में डेविड लिविंग्स्टन ने किस जल-प्रपात का अन्वेषण किया ?

उत्तर पृष्ठ ६५ पर देखो

अनसूया

अनसूया महामुनि अत्रि की पत्नी थी। वह परम पतिव्रता, अपूर्व सौन्दर्यवती तथा सब पर समान रूप से प्रेम एवं अनुकम्पा रखनेवाली माता के रूप में भी विख्यात थी।

एक बार ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ने यह संकल्प किया कि अनसूया के पातिव्रत्य तथा माहात्म्य का परिचय इस जगत को दिया जाये। तीनों ने ब्राह्मणों का वेश धारण किया और अत्रि मुनि के आश्रम में पहुँचे। अनसूया ने उनकी आवभगत की और विनम्र स्वर में पूछा, "महानुभावो, मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ ?"

"हम आपकी कुटी में कुछ देर विश्राम करना चाहते हैं। हमें आप अपनी गोद में लेकर लोरियां सुनायें, यही हमारी आकांक्षा है।" तीनों ने एक स्वर में उत्तर दिया।

उनका आग्रह जानकर अनसूया मंद हास कर बोली, "पुत्रो, ठीक है ! मैं तुम्हारी इच्छा अवश्य पूर्ण करूँगी।" यह कह कर अनसूया ने उन तीनों पर अक्षत डाले। वे तीनों ब्राह्मण-वेशधारी ब्रह्मा, विष्णु और महेश तत्क्षण तीन शिशु बन गये। अनसूया ने वात्सल्य पूर्वक उन्हें गोद में लिया, मातृ-प्रेम से उन्हें दूध पिलाकर उन्हें लोरियां सुनायीं।

अनसूया की महिमा पर तीनों देवाधिदेव मुग्ध होगये। इसके बाद उन्होंने अपना वास्तविक रूप धारण कर अनसूया से वर माँगने को कहा। अनसूया ने कहा, "आप तीनों मेरी कोख से जन्म लें।" ---कुछ समय बाद ब्रह्मा के अंश से सोम, विष्णु के अंश से दत्तात्रेय और शिव के अंश से दुर्वासा का जन्म हुआ।

वनवास के समय सीता, राम और लक्ष्मण ने अत्रिमुनि के आश्रम का दर्शन किया। उस समय अनसूया ने सीता को सती-धर्म का उपदेश दिया और कभी न मलिन होनेवाले, शाश्वत कान्तिवाले वस्त्र और आभूषण उपहार में दिये।

आत्मरूप

चतुरंगपुर पर उस समय राजा चंद्रहास का शासन था। उनकी राजसभा में रुद्राक्ष नाम का एक व्यक्ति था जिसे राजा चंद्रहास ने राजगुरु का पद और सम्मान दिया था।

राजगुरु रुद्राक्ष के प्रति राजा चंद्रहास की विशेष श्रद्धा, भक्ति का एक कारण यह भी था कि जब चंद्रहास अपने ज्ञातिजनों के वैरभाव का शिकार बन विपदा में फँस गये थे तब रूद्राक्ष के निरन्तर सहयोग और उचित परामर्श ने उन्हें बहुत बल दिया था। इस बात को वह चाह कर भी भूल नहीं पाता था।

वैसे रुद्राक्ष अपने को वैरागी मानता था, लेकिन अहंकार उसके अन्दर कूट-कूटकर भरा था। वह गेरुए रंग के रेशमी वस्त्र, कंठ में रत्नहार और हाथों में सोने के कंगन पहना करता था। राजा के यहाँ उसका प्रभाव चलता था, इस कारण वह मंत्रियों तथा अन्य राज-अधिकारियों की उपेक्षा करके उनका अपमान किया करता था।

रुद्राक्ष ने एक दिन चंद्रहास से कहा, "राजन्, सब अच्छी तरह से जानते हैं कि आप मेरे प्रति अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति रखते हैं। मैं चाहता हूँ, अगली पीढ़ियां भी इस बात को जानें, इसलिए आप मेरी एक शिला-प्रतिमा बनवाकर नगर के किसी प्रमुख स्थान पर उसकी प्रतिष्ठा करवा दीजिए!"

चंद्रहास ने रुद्राक्ष की इच्छा स्वीकार की और मंत्री मार्तण्ड को राजगुरु रुद्राक्ष की कामना बताकर कहा, "इस कार्य को संपन्न करने के लिए आप सुप्रसिद्ध शिल्पियों को बुलाकर उनका परामर्श लीजिए। उनमें जो सबसे अधिक निपुण शिल्पी हो, उसे यह काम सौंप दीजिए। एक बात का और ध्यान रखना होगा। राजगुरु का जन्म दिन बहुत दूर नहीं है। हम उनके जन्मदिवस के उत्सव पर ही उनकी प्रतिमा की प्रतिष्ठा करेंगे।"

अशोक राय

गुरु रुद्राक्ष के जन्मदिन से कुछ दिन पहले शिल्पी मल्हण अत्यन्त परिश्रम से निर्मित उस प्रतिमा को लेकर चतुरंगपुर पहुँचा ।

मंत्री मार्तण्ड ने यह समाचार राजा चंद्रहास को दिया। राजा बहुत प्रसन्न हुए और बताया कि वे अपने गुरु के जन्मदिन-समारोह के अवसर पर स्वयं अपने हाथों से उस प्रतिमा को स्थापित करेंगे ।

समारोह आया। मंगलवाद्यों के बीच राजा चंद्रहास ने प्रतिमा पर आवरित वस्त्र को हटाया। रुद्राक्ष ने अपनी मूर्ति देखी तो क्रोधावेश में आकर पूछा, "राजन, क्या यह मेरी प्रतिमा है ? आप गौर से देखें, इसके अन्दर मेरी रूपरेखाएँ दिखाई नहीं देतीं। यह तो मेरे लिए अपमान की बात है ।"

राजा यह सब सुनकर बहुत लज्जित हुए और उन्होंने मंत्री मार्तण्ड की ओर देखा। मंत्री मार्तण्ड ने विनयपूर्वक निवेदन किया, "महाराज, इस प्रतिमा का निर्माण सुविख्यात शिल्पी मल्हण ने किया है । उन्होंने असंख्य अद्भुत शिल्पों की रचना की है और उन्हें यह यश प्राप्त है कि उनकी तुलना करनेवाला सारे देश में कोई नहीं है । हो सकता है उनके भीतर अहंकार आगया हो ! प्रतिमा के अन्दर जो भी त्रुटियाँ हैं, हम उनकी ओर शिल्पी का ध्यान आकृष्ट करेंगे ।"

इस के बाद जरा भी विलंब किये बिना मंत्री मार्तण्ड ने तुरन्त शिल्पी मल्हण को बुलवाया।

मंत्री मार्तण्ड ने राजसभा के प्रमुख चित्रकार से राजगुरु का चित्र तैयार करवाया । तदंनतर उन्होंने शिल्पियों की सभा की और सबके परामर्श के अनुसार इस चित्र को अवन्ती नगर के सुविख्यात शिल्पी मल्हण के पास भेज दिया। मंत्री ने चित्र के साथ एक पत्र भी भेजा था ।

पत्र का विवरण इस प्रकार था, "ज्ञात हो, यह चित्र चतुरंगपुर के राजा चंद्रहास के गुरु रुद्राक्ष का है । आप इस चित्र के आधार पर राजगुरु की प्रतिमा का निर्माण करें और इस बात का विशेष ध्यान रखें कि राजगुरु संन्यासी और वैरागी हैं । शिल्प का निर्माण जल्दी होना चाहिए, इस कार्य में बिलकुल विलंब नहीं होना चाहिए । ऐसी हमारे महाराज की आज्ञा है !"

शिल्पी मल्हण तत्काल उपस्थित हुआ। राजा, राजगुरु सभी वहाँ मौजूद थे। राजा ने उससे कहा, "मल्हण, तुम भले ही एक सुविख्यात शिल्पी हो, लेकिन तुम हमारे गुरु की प्रतिमा गढ़ने में असफल प्रमाणित हुए हो। स्वयं राजगुरु का कहना है कि उनके स्वरूप और प्रतिमा के बीच कोई साम्य नहीं है।"

मल्हण के लिए यह जीवन में पहली घटना थी। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने मंत्री की तरफ़ देखा, फिर राजा से निवेदन किया, "महाराज, वास्तव में मंत्री महोदय से प्राप्त चित्र को देखने के बाद ही मैंने राजगुरु की प्रतिमा गढ़ना आरंभ किया था। चित्र के साथ एक पत्र भी था, जिसमें यह निर्देश था कि प्रतिमा को गढ़ते वक्त इस बात का पूरा ध्यान रखा जाये कि राजगुरु रुद्राक्ष एक संन्यासी और वैरागी हैं।"

"जी महाराज, यह बात सत्य है।" मंत्री ने कहा।

तब मल्हण ने सामने खड़े राजगुरु रुद्राक्ष को परख कर देखा, फिर कुछ सोचते हुए कहा, "मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि सर्वस्व को त्यागने वाले महापुरुषों की रूप रेखाएं कैसी होती हैं। इसीलिए मैंने प्रतिमा के मुख-मंडल को अत्यन्त प्रशान्त बनाया है। वस्त्र-धारण में सादगी, कंठ में रुद्राक्षमाला, हाथ में दंड एवं कमंडलु—इन परिवर्तनों को मैंने आवश्यक माना और इसी आधार पर प्रतिमा का निर्माण किया। पर अब मैं अपनी भूल समझ गया हूँ और आप सबसे क्षमा-याचना करता हूँ। मुझे

एक और अवसर दिया जाये। मैं भेजे गये चित्र के आधार पर एक और प्रतिमा का निर्माण करूँगा।"

"ठीक है! पर यह कार्य शीघ्र सम्पन्न होना चाहिए! सुनो, इस बार राजगुरु की शिकायत का मौक़ा न मिले।" राजा ने आदेश दिया।

इसके बाद मल्हण ने राजा को झुककर अभिवादन किया और वहाँ से चलने को उद्यत हुआ। तभी राजगुरु रुद्राक्ष ने उसे रोककर कहा, "सुनो, इस प्रतिमा के अन्दर किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। साथ ही, नगर में इसके प्रस्थापित करने की आवश्यकता भी नहीं है।"

राजगुरु रुद्राक्ष के इस निषेध से सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। राजगुरु ने आगे कहा, "राजन, मैंने आध्यात्मिक विषयों का बहुत थोड़ा ज्ञान अर्जित किया है, फिर भी वह इतना पर्याप्त तो था ही कि मैं लौकिक बातों में पड़कर लोगों को कष्ट न पहुँचाता। मेरा आत्मरूप परोक्ष में चला गया और अहंकारग्रस्त रूप बाहर मनमानी करता रहा। आप लोगों को भी इसका अनुभव मिला होगा।"

सब मौन खड़े रहे। तब फिर राजगुरु ने कुछ स्मितपूर्वक कहा, "मंत्री मार्तण्ड ने प्रतिमा के निर्माण में उचित निर्देश देकर शिल्पी मल्हण के द्वारा मेरा अत्यन्त उपकार किया है। शिल्पी मल्हण ने मेरे परोक्षगत आत्मरूप को प्रत्यक्ष करवाया है। राजन, ऐसे समर्थ मंत्री और राजकर्मचारियों के होते हुए राजकार्यों में मेरी क्या आवश्यकता है? वास्तव में संन्यासी को नगर के कोलाहल से दूर वन में निवास करना चाहिए। मेरा आत्मरूप आज मेरे सामने है। इसकी रक्षा और विकास के लिए मुझे भगवान का ध्यान करना है। मेरे लिए आज इससे अधिक महत्वपूर्ण और कोई कार्य नहीं। मैं अब तीर्थाटन करूँगा।"

दूसरे दिन राजगुरु रुद्राक्ष ने राजभवन का त्याग कर दिया और नंगे पांव तीर्थाटन के लिए चल पड़ा। अब उस का मन निर्मल था और वह सच्चे अर्थों में एक संन्यासी था।

लालची सौदागर

रामपुर गाँव के निकट फलों का एक बगीचा था, जिसमें आनन्द स्वामी नाम के एक संन्यासी कुटी बनाकर रहते थे। उनके अनेक शिष्य थे। उनमें से कुछ तो सच्चे जिज्ञासु थे, पर कुछ आध्यात्मिक चर्चा की अपेक्षा लौकिक बातों में अधिक अभिरुचि रखते थे। फिर भी आनन्द स्वामी उन्हें और बाहर से आनेवाले आगन्तुकों को सुखमय, शांत और सरल जीवन बिताने का उपदेश देते थे।

आनन्द स्वामी के शिष्यों में एक सौदागर भी था। नाम था शान्ताराम। वह अव्वल दर्जे का कंजूस और लालची था। उसने हज़ारों रुपये कमाये, फिर भी अगर एक कौड़ी खर्च हो जाती तो वह उसका घाटा पूरा करने के लिए एक समय का खाना बन्द कर देता। उसने अपने जीवन में न किसी मित्र को खाने का निमंत्रण दिया और न किसी धार्मिक कार्य के लिए एक पैसा चन्दा दिया।

शान्ताराम नाम का ही शान्ताराम था। वह सदा अशान्त, चिन्तित और अन्य मनस्क रहा करता था। उसकी स्थिति देख आनन्द स्वामी अक्सर उससे पूछा करते, "तुम कभी प्रसन्न नहीं दिखते। मैंने तुम्हें कभी हँसते हुए नहीं देखा। क्या बात है ?"

यह सवाल सुनकर शान्ताराम सौदागर और अधिक चिन्तित होकर जवाब देता, "साधु महाराज, प्रसन्न होने के लिए कोई बात भी तो चाहिए ? यह सारा जगत दुष्टों से भरा हुआ है। मैं चाहे जितना श्रम करूँ, मुझे तदनुरूप फल प्राप्त नहीं होता।"

आनन्द स्वामी ने कई बार उसे समझाया, "तुम अनावश्यक भयों एवं आशंकाओं के शिकार हो। हमेशा कुढ़ते रहते हो। इस संसार में बहुत से लोग ग़रीब हैं, पर अपनी स्थिति में सन्तुष्ट रहकर अपने दिन गुज़ारते हैं। तुम भी अपने व्यवहार को बदल सको तो सुखपूर्वक

मनोज दास

अपनी ज़िन्दगी बसर कर सकते हो ।"

शान्ताराम सब बातें बड़ी सावधानी से सुनता, लेकिन उसके अन्दर कोई परिवर्तन न हुआ और वह ज्यों का त्यों बना रहता ।

कुछ दिन और बीत गये । इस बीच आनन्द स्वामी ने बिस्तर पकड़ लिया । उन्होंने अपने सभी शिष्यों को बुलाकर कहा, "अब मेरा अन्तिम समय क़रीब है । मैं चाहता हूँ, तुम सब सुखी, स्वस्थ और सन्तुष्ट रहो । तुम लोग भगवान पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रखना, इससे तुम्हें सुख और शांति प्राप्त होगी । अगर तुममें से किसी की कोई जिज्ञासा हो, या किसी प्रकार के परामर्श की आवश्यकता हो, तो तुम लोग एक-एक करके मुझसे एकान्त में मिल सकते हो ।"

अपने गुरु की रुग्णता और अन्त समय की सन्निकटता देख सारे शिष्य एकदम अवसाद में डूब गये ।

वे सब अलग-अलग अपने गुरु से मिले और सबने उनसे आशीर्वाद का निवेदन किया ।

अन्त में लालची शान्ताराम भी अपने गुरु से मिलने आया । उसने कहा, "स्वामीजी, आप सबसे पहले मुझे यह वचन दीजिए कि मैं आपसे जो कुछ भी माँगूगा, आप अवश्य मुझे देंगे ।"

आनन्दस्वामी अब सदा के लिए शांति की नींद सोने की आतुरता में थे । वे इस लालची सौदागर को शीघ्र विदा करना चाहते थे । उन्होंने उसके प्रश्न का कोई स्पष्ट समाधान न देकर केवल सिर हिला दिया ।

लालची शान्ताराम झट बोला, "स्वामीजी, आपके सबसे अधिक पुराने और निकटतम शिष्य विलोचन ने मुझे यह बताया है कि आपके पास शक्तियों का अद्भुत भंडार है । सुना है आप लोहे को सोना भी बना सकते हैं । आप अपनी यह शक्ति कृपा कर के मुझे प्रदान कीजिए ।"

सौदागर की यह कामना सुनकर मृत्यु की घड़ियाँ गिननेवाले संन्यासी को अपार आश्चर्य हुआ । वे बोले, "अच्छा, तो तुम यह समझते हो कि मेरे पास ऐसी अनोखी शक्तियां हैं ! लेकिन, सुनो एक बात याद रखना, अगर तुम्हें ऐसी शक्ति मिल गयी तो तुम और अधिक चिंता

और व्याकुलता के शिकार हो जाओगे। मैं तो चाहूँगा कि तुम अपनी ऐसी कोई इच्छा बताओ, जिससे मैं तुम्हारी सच्ची भलाई कर सकूँ।"

"स्वामीजी, मेरी इस इच्छा में तो भलाई ही भलाई है। इस अद्भुत शक्ति को पाने के बाद संसार में मेरे जैसा सुखी व्यक्ति और कोई न होगा। सोने की प्राप्ति अत्यधिक सुख का कारण होती है।" लालची शान्ताराम ने साहस पूर्वक कहा।

आनन्द स्वामी ने समझ लिया कि इस व्यापारी को नीति का उपदेश देना निष्फल होगा। उन्होंने उसे तत्काल वहाँ से विदा कर देना चाहा और एक मंत्र बताते हुए कहा, "तो सुनो, यह मंत्र है। किसी भी प्रकार का लोहा क्यों न हो, तुम उसे छूकर इस मंत्र को जपना, वह सोना बन जायेगा।"

शान्ताराम अत्यन्त सन्तुष्ट होकर साधु की कुटी से बाहर आगया।

इसके थोड़ी देर बाद योगी का देहान्त हो गया। अन्य शिष्य तो अवसन्न-से हो गये, लेकिन शान्ताराम कुछ प्रसन्न दिखा। यह देख अन्य शिष्यों ने सोचा कि गुरु महाराज ने इसे भगवान के सान्निध्य में जाने का कोई विशेष मंत्रोपदेश दिया है। हमें तो ऐसा सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। अवश्य ही गुरुदेव ने इसके अन्दर कोई विशेष पात्रता देखी होगी। तभी तो इस को उपदेश दिया होगा।

एक सप्ताह निकल गया। शान्ताराम सौदागर ने सोचा कि बाज़ार से फूट का लोहा ख़रीद लेना चाहिए। उसने एक व्यापारी से फूट

के लोहे का दाम पूछा तो उसे कुछ ज्यादा प्रतीत हुआ। उसने लोहे का दाम घटने तक इन्तज़ार करना उचित समझा ।

इसके बाद वह हर सप्ताह बाज़ार में जाता और लोहे के दाम का पता लगाता । लेकिन काफ़ी दिनों तक लोहे के दाम में कोई घटाव-बढ़ाव न आया । उसके मन में यह बात आयी भी कि लोहे को तो सोने में बदलना है, अगर कुछ महंगा भी मिल जाये तो कोई नुक़सान नहीं । पर, फिर वह यह सोचकर रुक गया कि लोहे के व्यापारी को क्यों नफ़ा दिया जाये ?

इस प्रकार दो वर्ष और बीत गये । इस बार अचानक फूट के लोहे का दाम गिर गया ।

लालची सौदागर ने कई गाड़ियां भर कर फूट का लोहा ख़रीद लिया । यह सारा लोहा सोना बनेगा, इसलिए सुरक्षा का विचार रख उसने घर की मरम्मत का काम आरंभ किया । इस काम में अनेक राज, मिस्त्री और मज़दूर लगाये गये । बालू, चूना, ईंट, लकड़ी आदि ख़रीदने में शान्ताराम ने बहुत सा पैसा खर्च कर दिया ।

जब सब हो गया तब एक रात शान्ताराम सौदागर लोहे के उस अम्बार के बीच बैठ मंत्रोच्चारण की तैयारी करने लगा । उसने अपने दिमाग़ पर बहुत दबाव डाला, पर उसे वह मंत्र याद नहीं आया । वह निराश होकर सिर पर हाथ मार-मार मंत्र का स्मरण करने लगा, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ । इस सौदागर ने लालच के कारण दो साल निकाल दिये थे । वह लोहे के भाव-ताव में ही इतना खो गया था कि मंत्र का उसे कोई ख़्याल ही नहीं रहा । यहाँ तक कि अब तो उस मंत्र की छाया भी उसके दिमाग़ में नहीं थी ।

सच बात तो यह है कि धन के लोभ ने उसके दिमाग पर पर्दा डाल दिया था, वह कुछ सोचने व समझने की स्थिति में न रहा।

धीरे-धीरे शान्ताराम को मतिभ्रम होगया । उसने अपना शेष जीवन लोहे का पहरा देते हुए बिताया ।
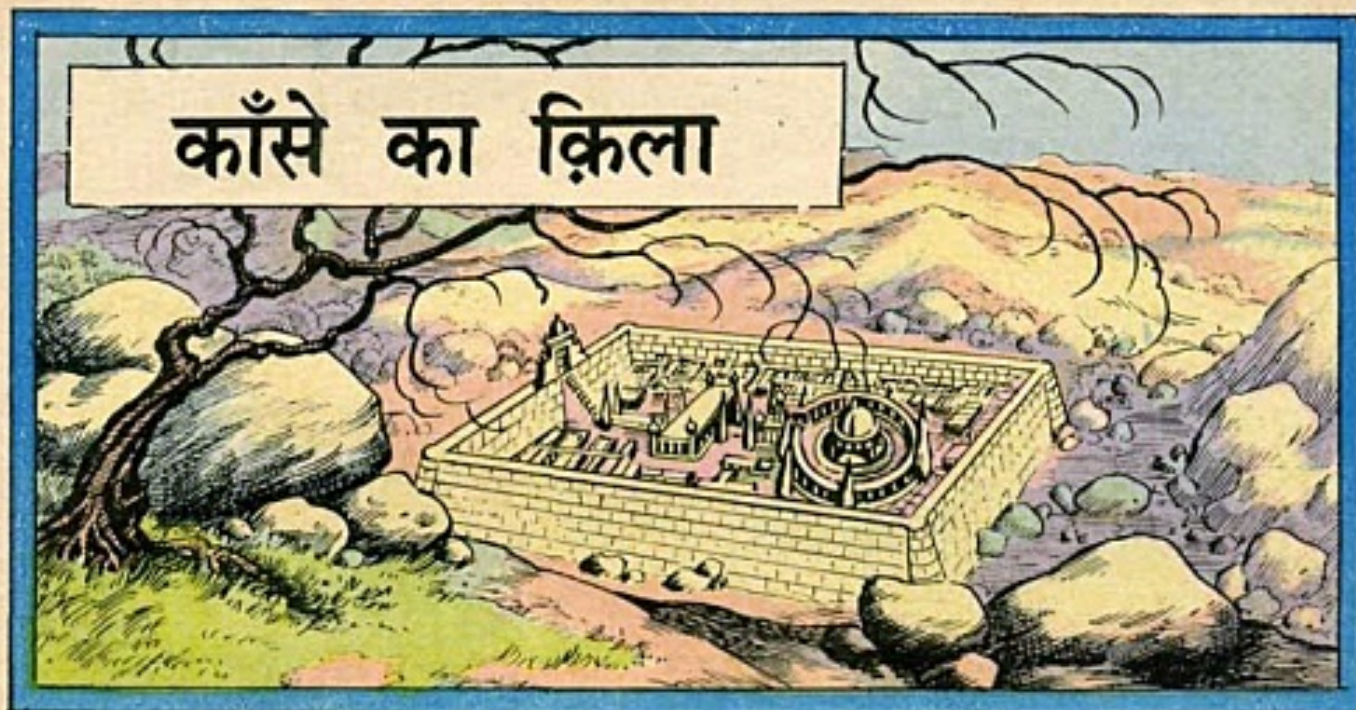
१६

[काँसे के क़िले तक पहुँचने के लिए रुद्रपुर के राजा शिवसिंह ने चंद्रवर्मा की मदद की। चंद्रवर्मा राज्य के चार प्रमुख अधिकारियों, सैनिकों तथा देवल को साथ लेकर पश्चिम दिशा की ओर निकल पड़ा। मार्ग में उन्हें एक खंडहर पड़ा नगर दिखाई दिया। वहाँ उन्हें एक शिलालेख भी मिला, जिस में इस नगर का करवीरपुर नाम उल्लेख किया गया था तथा काँसे के क़िले का भी उल्लेख था। आगे पढ़िये----]

करवीरपुर के उजड़े हुए मकानों, खंडहरों को पार कर चंद्रवर्मा ने पश्चिम दिशा में अपनी यात्रा बढ़ायी। अभी वह कुछ ही दूर गया था कि अचानक उसे ऊँचे पर्वतों की श्रृंखला दिखाई दी। उन पर्वतों को पार करना आसान काम न था। सारा पर्वत-प्रदेश ऊबड़-खाबड़ था। खाद्य सामग्री को ढोनेवाले खच्चरों को लेकर उस पर्वत पर चढ़ना और उस पार उतरना एकदम असंभव था। वैसे बिना सामान के ही पहाड़ पर चढ़ना कठिन था, श्रम साध्य था। ऐसी हालत में खच्चरों को ले जाना कठिन ही नहीं बल्कि असंभव था। यह सत्य जानते हुए भी खच्चरों पर खाद्य पदार्थ लाद कर ले जाने का प्रयत्न करना मूर्खता पूर्ण था। ये ही सब बातें विचार कर चंद्रवर्मा ने अपने मन में कुछ निर्णय कर लिया।

चंद्रवर्मा ने अपने दल के लोगों से कहा, "खच्चरों के साथ आगे बढ़ना हमारे लिए एक

दम असंभव है। अब तो एक ही उपाय है कि हम जितनी सामग्री अपने कंधों पर लादकर पर्वत पर चढ़ सकते हैं उतनी ही सामग्री अपने साथ लें और खच्चरों को यहीं पर छोड़ दें!"

चंद्रवर्मा की बात से कुछ लोग सहमत नहीं हो सके। उनमें से एक प्रमुख अधिकारी ने आपत्ति उठाते हुए कहा, "हम स्वयं नहीं जानते कि पर्वत के उस पार क्या है? हो सकता है हमें वहाँ कोई भी खाद्य पदार्थ न मिले। हम स्वयं बहुत थोड़ी सामग्री ढो सकते हैं। ऐसी स्थिति में हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि खच्चरों को आधी से अधिक खाद्य सामग्री के साथ यहाँ छोड़ देना हमारे लिए ख़तरे से ख़ाली न होगा।"

"इस पहाड़ पर चढ़ने के लिए कहीं कोई पगडंडी, या कोई रास्ता नहीं है। हमें स्वयं रस्सों की मदद से चढ़ना होगा। रस्सों के सहारे खच्चरों को तो ऊपर नहीं ले जाया जा सकता। इसलिए यही एक उपाय है कि खच्चरों का और खाद्य सामग्री का मोह छोड़ दिया जाये।" चंद्रवर्मा ने स्पष्ट कह दिया।

शिवसिंह के चार प्रमुख अधिकारियों के अलावा दल के बाक़ी सब लोगों ने चंद्रवर्मा की बात का समर्थन किया।

खच्चरों पर लदे बोरे उतार दिये गये और सबने अपनी सामर्थ्य के अनुसार गठरियों को अपने कंधों एवं सिरों पर रख लिया और हिम्मत बटोर कर पहाड़ की तरफ़ अपने क़दम बढ़ाये।

पहाड़ पर चढ़ने का कार्य सूर्योदय से पहले ही प्रारंभ होगया था। क़रीब आठ घंटे की कठिन चढ़ाई के बाद वे लोग एक ऐसे स्थल पर पहुँचे, जो समतल था। वहाँ उन्होंने अपना मध्यान्ह का भोजन लिया और थोड़ी देर विश्राम करके फिर पहाड़ पर चढ़ने लगे। सूर्यास्त होने से थोड़ी देर पहले ही सब लोग पहाड़ की चोटी पर पहुँच गये।

पर्वत-शिखर पर सबसे पहले पहुँचने वाले चंद्रवर्मा और देवल थे। वहाँ खड़े होकर उस पार के प्रदेश का जो दृश्य उन्होंने देखा, उससे उन्हें अपार आनन्द और आश्चर्य हुआ।

पहाड़ी तलहटी में एक महानगर बसा हुआ था। उस नगर के ऊँचे भवनों की बुर्जियों पर डूबते सूरज की किरणें इंद्रधनुष की रचना कर

रही थीं। नगर और पहाड़ के बीच फलों के बगीचे और खेत दूर तक फैले हुए नज़र आ रहे थे।

यह नगर किस राजा का है ? इसका नाम क्या है ? चंद्रवर्मा विस्मित हो मन ही मन सवाल कर रहा था। तभी दल का एक अधिकारी भी उसके निकट पहुँच गया। तलहटी में बसे उस नगर को देख वह खुशी से चिल्ला उठा, "अरे, यह नगर तो शिवपुर है, शिवपुर !"

"तुम निश्चयपूर्वक कैसे कह सकते हो कि यह शिवपुर है ? क्या तुम कभी इस नगर में आये हो ?" चंद्रवर्मा ने उत्सुकता पूर्वक सवाल किया।

"हाँ, मैं इस नगर में आया हूँ और एक माह यहाँ रहा भी हूँ। यह नगर रुद्रपुर राज्य की पश्चिमी सीमा पर बसा हुआ है। इसके आगे दूर तक रेगिस्तान है। इस नगर के राज-प्रतिनिधि वीरमल्ल को भी मैं जानता हूँ।" राज-अधिकारी ने कहा।

"इसका मतलब है कि तुम रुद्रपुर से इस नगर तक पहुँचने के मार्ग से भी अच्छी तरह से परिचित हो। लेकिन आश्चर्य सी बात है कि तुमने यह बात कभी मुझे नहीं बतायी ?" चंद्रवर्मा ने सशंकित होकर पूछा।

यह प्रश्न सुनकर वह अधिकारी घबरा गया, फिर संभलकर बोला, "बात वास्तव में यह है कि मैं पिछली बार इस नगर में इस मार्ग से नहीं आया था बल्कि दूसरे मार्ग से आया था। दर असल राजधानी रुद्रपुर से शिवपुर नगर तक पहुँचने का एक और मार्ग भी है जो मुझे इस समय याद नहीं आ रहा।" उसने अपनी सफाई दी।

चंद्रवर्मा उस अमुक राज-अधिकारी से बात कर ही रहा था कि तभी उन्हें पहाड़ी तलहटी से भेरी की आवाज़ सुनाई दी।

इसी के प्रत्युत्तर में नगर की एक बुर्जी से डंके की भयानक आवाज़ गूंज उठी। उसी क्षण बुर्ज पर कुछ धनुषधारी और भालेधारी सैनिक आ पहुँचे।

चंद्रवर्मा ने भाँप लिया कि नगर-रक्षक उन्हें दुश्मन समझकर संकेतों द्वारा चेतावनी दे रहे

हैं। बुर्ज पर खड़े वे सैनिक अपने तीरों का उन पर उपयोग करें, इससे पहले ही उन्हे यह सूचित करना उचित होगा कि वे शत्रु नहीं मित्र हैं। यह विचार आते ही चंद्रवर्मा ने एक सफ़ेद वस्त्र को अपनी तलवार की नोक पर उठाकर हवा में लहराया।

बुर्ज पर खड़े सैनिक अभी पहाड़ी शिखर की ओर ही ताक रहे थे कि एक प्रभावशाली व्यक्ति सैनिकों को ढकेलता हुआ एक दम आगे आया और उसने धनुष पर बाण चढ़ाकर चंद्रवर्मा की तरफ़ फेंका। तीव्र ध्वनि करता वह बाण आकर चंद्रवर्मा से थोड़ी दूर पर ज़मीन में धँस गया। उस पर काग़ज़ का एक टुकड़ा बँधा हुआ था।

चंद्रवर्मा ने बड़ी आतुरता के साथ उस बाण को अपने हाथ में लिया और कागज़ का वह पुर्जा खोल कर पढ़ने लगा। उसमें शिवपुर दुर्ग के प्रधान रक्षक के हस्ताक्षर थे।

उसने यह विवरण माँगा था! "आप लोग कौन हैं? कहाँ के निवासी हैं? और किस काम से इस प्रदेश में आये हैं? यदि तुरन्त इन सवालों का जवाब नहीं दिया गया तो आपको शत्रु समझा जायेगा और शत्रु-सदृश व्यवहार किया जायेगा।"

पत्र पढ़ने के बाद चंद्रवर्मा ने रुद्रपुर के राजा शिवसिंह के द्वारा प्राप्त आज्ञा-पत्र को बाण से बाँध कर उसे इस प्रकार फेंका कि वह दुर्ग की बुर्ज पर जा गिरे।

कुछ ही देर में बुर्ज पर प्रसन्न कोलाहल होने लगा। सैनिक जयनाद करने लगे और चंद्रवर्मा को यह सूचना दे दी गयी कि वे लोग

दल-सहित चंद्रवर्मा का स्वागत करेंगे ।

पहाड़ के दूसरी तरफ़ नगर में उतरने के लिए पत्थर की सीढ़ियां बनी हुई थीं । चंद्रवर्मा दलसहित उन सीढ़ियों से उतरा और थोड़ी ही देर में दुर्ग की परिखा के निकट पहुँच गया । कुछ नगर-सैनिक भी वहाँ आगये थे । चंद्रवर्मा ने उन्हें देखा । वह आनन्द और आश्चर्य से नाच उठा । जब उसने देखा कि सैनिकों के आगे दलनायक के रूप में जो खड़ा है, वह और कोई नहीं, उसका पुराना मित्र और सेवक सुबाहु है ।

सुबाहु ने अपने युवराज चंद्रवर्मा को तुरन्त पहचान लिया । दूसरे ही क्षण उसने बड़े सांकेतिक रूप में चंद्रवर्मा की तरफ़ हाथ हिलाया । जिसका आशय था कि अभी इस बात को गुप्त ही रखा जाये कि वे एक-दूसरे को पहचानते हैं ।

चंद्रवर्मा तुरन्त इस संकेत को समझ गया और सुबाहु के पास जाकर प्रणाम करके बोला, "क्या आप शिवपुर के सेनापति हैं ? मैं राज प्रतिनिधि वीरमल्ल से मिलना चाहता हूँ । उनसे कुछ ख़ास बातों पर चर्चा करनी है ।"

"महानुभाव, आप शीघ्र ही राज प्रतिनिधि वीरमल्ल से मिलेंगे, लेकिन इससे पहले आप भोजन और विश्राम कीजिये । मैं आपके लिए और आपके दल के लिए पूरी व्यवस्था का निर्देश दे चुका हूँ ।" यह कह कर सुबाहु ने अपने अनुचरों को दल की देखभाल का काम सौंप दिया और वह चंद्रवर्मा के निकट खड़ा हो गया ।

जब सुबाहु के अनुचर सारे दल के साथ दुर्ग

घाटी में नदी के किनारे जा लगा और थोड़े दिन बाद उन्हीं पहाड़ों में धीरमल्ल से उसकी भेंट हो गयी ।

धीरमल्ल सर्पकेतु के साथ आख़िर तक लड़ता रहा पर अन्त में पूरी तरह हार गया और उसे अपने मुट्ठी भर सैनिकों के साथ पहाड़ों और जंगलों का आश्रय लेना पड़ा ।

इस घटना के कुछ दिन बाद वे सब रुद्रपुर के राजा शिवसिंह की सेवा में लग गये । राजा शिवसिंह के आदेश से ही वे शिवपुर में कार्य संभालते हैं ।

शिवसिंह के यहाँ कार्य-वहन करने के समय ही धीरमल्ल ने अपना नाम वीरमल्ल बदल लिया था । उसके ज़िन्दा रहने का समाचार कभी भूल से भी सर्पकेतु को न मिल जाये, इसीलिए उसने अपना नाम बदला था ।

चंद्रवर्मा ने भी अपनी सारी आप बीती सुबाहु को कह सुनायी । उसके साथ क्या घटित हुआ, एक-एक बात, एक-एक घटना का समाचार सविस्तार समझाया । अन्त में चंद्रवर्मा ने अपने इस यात्रा-प्रसंग के बारे में बताया । चंद्रवर्मा के मुँह से काँसे के क़िले का नाम सुनकर सुबाहु कुछ देर के लिए विस्मय-विमूढ़ हो गया ।

"महाराज, ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे सारे कष्ट दूर हो जायेंगे और हमारा भाग्य फिर से उदित होगा । सच बात यह है कि सेनापति धीरमल्ल इस समय नगर में नहीं हैं । यह बात

के भीतर चले गये, तब सुबाहु ने गद्गद् हृदय से चंद्रवर्मा को प्रणाम किया और बोला, "महाराज, मैं अत्यन्त भाग्यशाली हूँ । मैं तो यह आशा ही छोड़ चुका था कि इस जन्म में मुझे पुनः आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होगा । चलिये, घर पहुँच कर सविस्तार हम बातचीत करेंगे ।" यह कहकर सुबाहु दुर्ग के भीतर की ओर चल पड़ा । चंद्रवर्मा ने उस का अनुसरण किया ।

चंद्रवर्मा और सुबाहु बहुत समय तक बातचीत करते रहे । सुबाहु ने चंद्रवर्मा को सारा वृत्तान्त कह सुनाया कि कैसे जब वे दोनों सर्पकेतु के सैनिकों से प्राण बचाने के लिए नदी में कूद पड़े थे तो सुबाहु संयोग से किसी पहाड़ी

हमने गुप्त रखी है। हमें ख़बर मिली है कि सर्पकेतु अपनी सेना लेकर कांसे के क़िले की ओर जा रहा है। उसकी सैनिक-शक्ति का पता लगाकर संभव हो तो मार्ग के मध्य में ही उसका संहार करने के लिए धीरमल्ल थोड़ी सी सेना लेकर गुप्त रूप से दो दिन पूर्व ही नगर से निकल गये हैं। पर हमें अभी तक उनका कोई समाचार नहीं मिला है। उनका वृत्तान्त जानने के लिए मैं व्यग्र हूँ। उनसे मिलकर आप को भी बड़ी प्रसन्नता होगी।" सुबाहु ने सारी वस्तु स्थिति बताते हुए कहा।

सर्पकेतु का नाम कान में पड़ते ही चंद्रवर्मा का चेहरा तमतमा गया, आँखों में सुर्खी दौड़ गयी।

चंद्रवर्मा को क्रोधाविष्ट देख सुबाहु ने समझा कर कहा, "महाराज, इस समय सर्पकेतु वीरपुर का ही नहीं, बल्कि सारे माहिष्मती राज्य का चक्रवर्ती है। यशोवर्द्धन चक्रवर्ती का देहावसान हो गया है। उनका ज्येष्ठ पुत्र तपोवर्द्धन वैरागी बनकर वनों में तपस्या करने निकल गया है। इसके बाद सर्पकेतु ने गुणवर्द्धन की मदद करने का प्रलोभन दिखाकर उसका वध करवा दिया और स्वयं माहिष्मती राज्य का राजा बन बैठा। वह बहुत बड़ा धूर्त है।"

"ओह, इतने बड़े राज्य का आधिपत्य पाने के बाद भी संपत्ति को लेकर उसकी प्यास नहीं बुझी और अब वह काँसे के क़िले के खज़ाने पर कब्जा करने निकला है?" चंद्रवर्मा ने कठोर स्वर में कहा।

"सर्पकेतु की इस यात्रा के पीछे केवल धन-संपत्ति की प्यास ही नहीं, बल्कि राज्य-वृद्धि की आकांक्षा भी है। उसने शिवपुर पर अचानक हमला नहीं किया, यह हमारे लिए क़िस्मत की बात भी है और आश्चर्य की भी। गुप्तचरों से हमें पता लग गया है कि वह किस मार्ग से कांसे के क़िले की तरफ़ बढ़ रहा है। शत्रु की गति विधि का पता लगाये बिना कोई व्यूह-रचना करना सामरिक तंत्र के विरुद्ध ही माना जाएगा। हम गुप्त चरों को चारों तरफ़ भेज कर तत्काल सर्पकेतु की चाल का पता लगा रहे हैं। आप आ गये, इसलिए हमारी हिम्मत बंध गई। विजय निश्चय ही हमारी

होगी ।" सुबाहु ने कहा ।

चंद्रवर्मा एवं सुबाहु के बीच अभी वार्तालाप चल ही रहा था कि इस बीच दूत ने प्रवेश करके सुबाहु के हाथ में एक पत्र दिया ।

उस पत्र को पढ़कर सुबाहु का चेहरा सफ़ेद पड़ गया । सुबाहु ने वह पत्र चंद्रवर्मा के हाथ में दे दिया ।

चंद्रवर्मा ने उस पत्र को पढ़ा । सेनापति धीरमल्ल ने वह पत्र सुबाहु के नाम लिखा था । उसका सारांश इस प्रकार था-धीरमल्ल ने अपनी थोड़ी सी सेना के साथ शिवपुर के उत्तर में स्थित रेगिस्तानी इलाक़े में सर्पकेतु की भारी सेना के साथ सामना करने की कोशिश की । सर्पकेतु के हज़ारों सैनिकों के साथ आमने-सामने होकर लड़ना ख़तरे से ख़ाली नहीं था । इसलिए धीरमल्ल ने पीछे हटना ठीक समझा । पर तभी सर्पकेतु पर यह रहस्य प्रकट होगया कि लड़ने वाला और कोई नहीं, चंद्रवर्मा का सेनापति धीरमल्ल है । धीरमल्ल अपनी थोड़ी-सी सेना के साथ शिवपुर की ओर भाग आ रहा है । इस कारण धीरमल्ल ने सुबाहु से यह अनुरोध किया था कि वह थोड़ी सी सेना को नगर में छोड़कर बाक़ी सेना लेकर तत्काल उसकी मदद को पहुँच जाये ।

"महाराज, यह तो आकस्मिक विपदा है । सेनापति धीरमल्ल के इस दुर्ग के रक्षा-वलय में पहुँचने से पूर्व ही यदि सर्पकेतु से उनका सामना हो गया तो न केवल धीरमल्ल पराजित होंगे, बल्कि इस नगर का भी सर्वनाश हो जायेगा । सर्पकेतु बड़ा ही अत्याचारी बन गया है । राज सत्ता पाकर वह अहंकारी हो गया है उसके हृदय में दया की भावना नाम मात्र केलिए भी नहीं है । उसके अधिकार के क्षेत्र में जो भी आता है, उस को निर्दयता पूर्वक कुचल कर अपने मार्ग को निष्कंटक बनाना अपना प्रमुख कर्तव्य मानता है। इस लिए यदि धीर मल्ल उसके हाथों में पराजित होगा तो उनको प्रणों से नहीं छोड़ेगा । इसलिए हमें सेना लेकर तुरन्त इसी वक्त उनकी रक्षा के लिए जाना होगा !" सुबाहु ने कहा ।

(क्रमशः)

नागकन्या

दृढ़व्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये। पेड़ से शव उतार कर कंधे पर डाल हमेशा की भाँति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगे। तब शव में वास करनेवाले बेताल ने पूछा, "राजन्, मेरी समझ में नहीं आता कि आप इस अर्धरात्रि के समय किस प्रयोजन के लिए इतना श्रम कर रहे हैं ? फिर भी, मैं एक बात याद दिलाना चाहता हूँ। इस दुनिया में ऐसे अनेक मूढ़ लोग हैं जो हाथ में आये हुए सुनहरे अवसर को धीरचंद्र की भाँति खो बैठते हैं। मुझे यह शंका हो रही है कि कहीं आप भी तो उसी श्रेणी के व्यक्ति नहीं हैं ? मैं आपको धीरचंद्र की कहानी सुनाता हूँ, श्रम को भुलाने के लिए सुनिये !"

बेताल ने कहानी सुनाना आरंभ किया:

एक दिन की बात है, कौमुदी नाम की एक नागकन्या पाताल लोक से पहली बार ऊपर आयी और सुन्दर मानवी रूप धारण कर नदी के

बेताल कथा

किनारे विहार करने लगी। घूमते हुए उसे लगा, "अहा, पृथ्वी लोक का वातावरण कितना आह्लादजनक है !" वह मन ही मन सोचने लगी, "ओह, मनुष्य कितना भाग्यशाली प्राणी है कि इस पृथ्वी पर रहता है !"

कौमुदी ऐसा विचार कर ही रही थी कि इस बीच उसे एक युवक दिखाई दिया। उस युवक का नाम धीरचंद्र था। वह इस समय विपदा का मारा था। एक ज़माने में उसका परिवार कृष्णनगर के धनीमानी परिवारों में एक माना जाता था। पर समय किसकी चिंता करता है? उसकी मां बीमार थी पर चिकत्सा के लिए धन न था। उसके पिता ने जो कर्ज़ लिया था, वह ब्याज सहित मोटी रक़म हो गयी थी।

उसने कर्ज़ चुकाने के लिए अपने पुरखों के मकान को बेच डाला। पर दुर्भाग्य ने उसका पीछा न छोड़ा और कर्ज़ चुकाने के लिए रखा हुआ वह धन चोर लूट ले गये। जिस आदमी ने उसका मकान ख़रीदा था, उसने मकान ख़ाली करने के लिए एक हफ़्ते की अवधि दी थी और आज उसका आख़िरी दिन था।

बीमार माँ और कर्ज़ का बोझ—उस पर निराश्रय ! कल से वह क्या करेगा ? इसी चिंता को लेकर धीरचंद्र नदी के किनारे आ बैठा था।

कौमुदी ने धीरचंद्र को तो देखा पर उसके चेहरे पर व्याप्त दुश्चिंता को नहीं देखा। वह उसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर मन ही मन उसकी प्रशंसा करने लगी, "अहा, कितना सुन्दर युवक है !"

धीरचंद्र इतने गहरे सोच में डूबा था कि वह कौमुदी की उपस्थिति नहीं जान सका। नागकन्या कौमुदी ने संकेत से उसका ध्यान भंग किया तो धीरचंद्र चौंक उठा। उसने कौमुदी पर दृष्टिपात कर पूछा, "तुम कौन हो ?"

"मेरा नाम कौमुदी है। मैं एक नागकन्या हूँ और पाताल लोक से आयी हूँ।" कौमुदी ने कहा और धीरचंद्र के चेहरे को परखने लगी। उसके मुख पर चिन्ता की गहरी रेखाएँ देख उसने पूछा, "तुम इतने उदास क्यों हो ?"

धीरचंद्र ने कौमुदी को अपना सारा दुर्भाग्य कह सुनाया। सारा हाल सुनकर कौमुदी ने कोमल स्वर में कहा, "मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।

क्या तुम मेरे साथ नागलोक में चलोगे ?"

नागकन्या के मुँह से अचानक यह प्रश्न सुनकर धीरचंद्र विमूढ़-सा हो गया। क्षण भर रुक कर बोला, "मैंने तुम्हें अपनी समस्याएं बतायीं। ऐसी हालत में मैं कहीं नहीं जा सकता !"

"तुम्हारी समस्याएं धन से जुड़ी हुई हैं। इसके लिए मैं तुम्हें सोना दे सकती हूँ। मैं अभी लाती हूँ, तुम यहीं रहो !" कहकर कौमुदी अदृश्य हो गयी।

धीरचंद्र को विश्वास नहीं हुआ कि यह जो अभी घटा, स्वप्न था कि सत्य ! पर कुछ ही क्षणों बाद कौमुदी उसके सामने प्रकट हुई और उसने धीरचंद्र के हाथों में एक थैली थमा दी। उसमें अनेक सुवर्ण मुद्राएँ और क़ीमती रत्न थे।

कौमुदी बोली, "सुनो, इस धन से तुम अपने कर्ज़ चुका दो और तुम्हारी अन्य कोई जिम्मेदारी भी हो तो उसे भी पूरा कर दो। अगली दशमी की रात मैं नदी के किनारे इसी स्थल पर तुम्हारा इन्तज़ार करूँगी। अगर तुमने यह वादा पूरा न किया तो मैं तुम्हारे परिवार से प्रतिशोध लूँगी।"

नागकन्या से प्राप्त इस धन से तो धीरचंद्र की तक़दीर ही बदल गयी। केवल एक रत्न बेचने पर उसे एक लाख स्वर्ण मुद्राएं प्राप्त हुईं। उस राशि से उसने एक सुन्दर भवन ख़रीदा। सारे कर्ज़ चुकाये। दास-दासियों को नियुक्त किया। अपनी माता की चिकित्सा के लिए धीरचंद्र ने एक अत्यन्त सुप्रसिद्ध वैद्य का
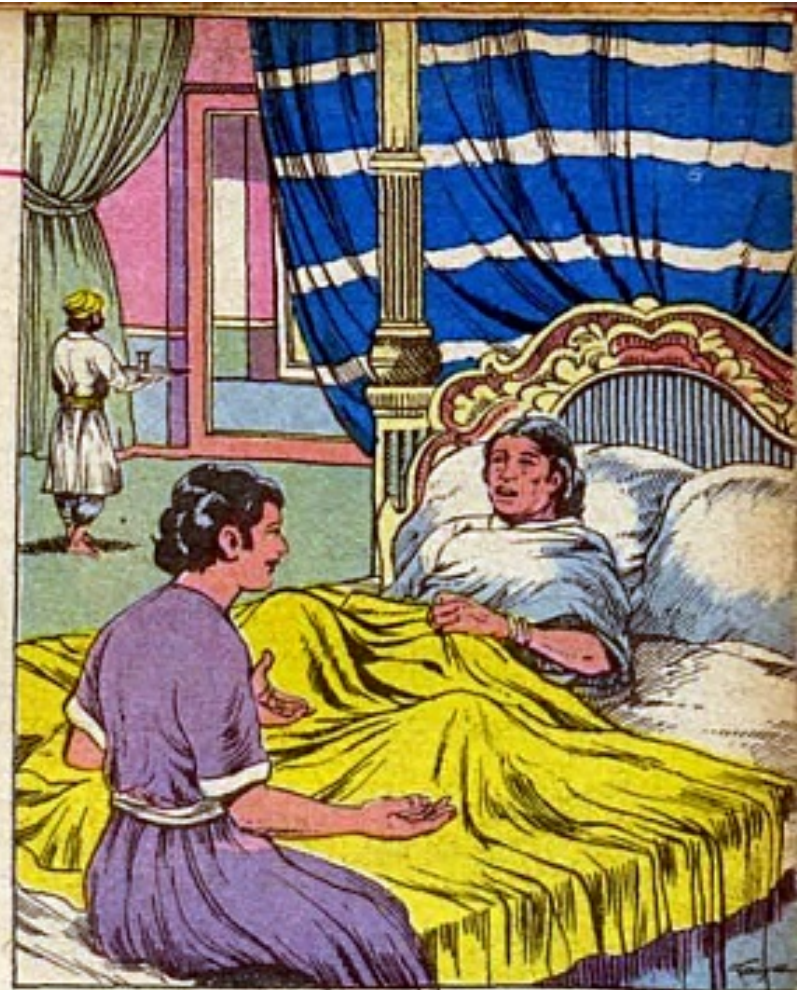
प्रबन्ध किया। उसके इलाज से उसकी माँ दो-चार दिन में ही उठने-बैठने लगी।

चेतन होने पर धीरचंद्र की मां कौशल्या ने इस नये भवन, ऐशो-आराम और परिचर्या करनेवाले दास-दासियों को देखा। उसका दिमाग़ चकरा रहा था कि यह सब आया कहाँ से ? उसने मतिभ्रम की-सी हालत में बेटे से पूछा, "बेटा धीर, हमारी हालत में इतना भारी परिवर्तन कैसे हुआ ?" धीरचंद्र ने अपनी माँ को सारी बातें सच-सच बता दीं।

सारा वृत्तान्त सुनकर कौशल्या डर गयी, चिन्तित होकर बोली, "बेटा, नागकन्या से सम्बन्ध रखना ख़तरे से ख़ाली नहीं है। तुम किसी भी तरह कौमुदी के चंगुल से मुक्त होने
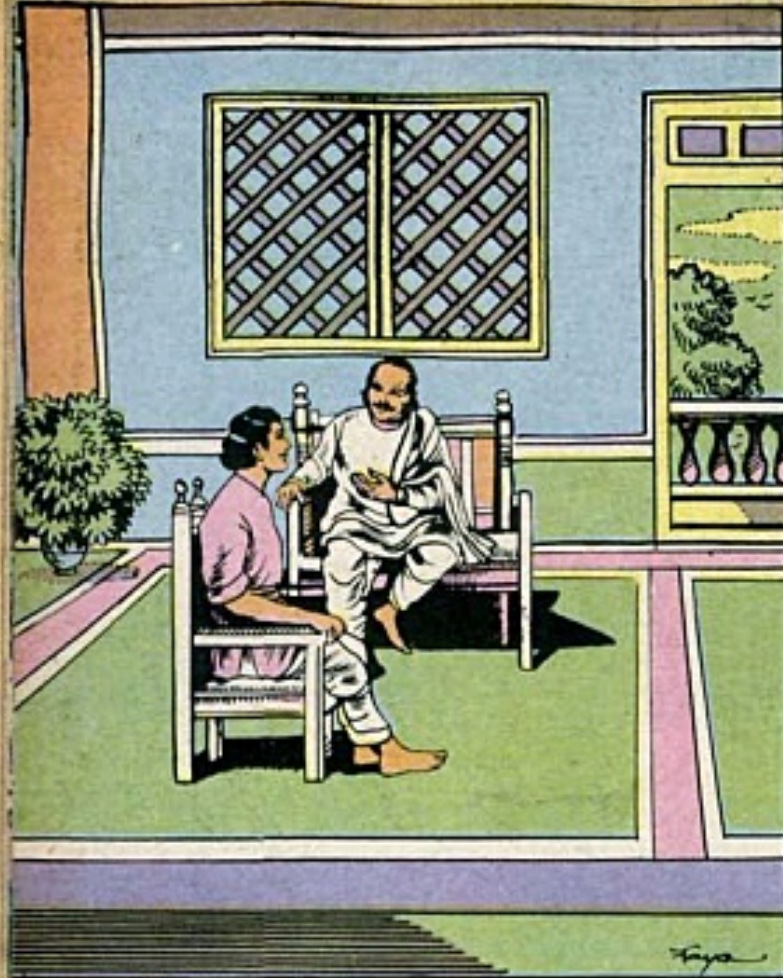
की कोशिश करो। मेरा धर्मभाई शूरगुप्त तुम्हारी मदद कर सकता है। तुम उसके पास जाओ और उससे सहायता माँगो !"

कौशल्या ने शूरगुप्त का नाम लिया, इसके पीछे एक कारण था। शूरगुप्त अत्यन्त स्वार्थी था। कौशल्या जानती थी कि स्वार्थ पड़ने पर ऐसे लोग जैसी मदद कर सकते हैं, वैसी कोई नहीं कर सकता। शूरगुप्त के घर में एक विवाहयोग्य कन्या थी। अभी तक ये लोग ग़रीबी की हालत में थे तो शूरगुप्त ने कभी इस दिशा में झाँकने का भी नाम नहीं लिया था। लेकिन अब धीरचंद्र की धन-दौलत देखकर निश्चय ही वह अपनी लड़की सुनन्दा का विवाह उससे करना चाहेगा।

कौशल्या का विचार सच निकला। धीरचंद्र जब शूरगुप्त के पास पहुँचा तो उसने उसका आवश्यकता से अधिक सत्कार किया। धीरचंद्र ने अपनी माँ की सलाह के अनुसार अपने मामा को सारा किस्सा सुना दिया। शूरगुप्त बोला, "बेटा, नागकन्या से पिंड छूटने का एक उपाय है। तुम दशमी को जब उससे मिलो तो यह बहाना कर दो कि तुम्हारी माँ के स्वास्थ्य में अभी कोई सन्तोषजनक सुधार नहीं हुआ है। और वह केवल नागमूली जड़ीबूटी के द्वारा ही संभव है। मुझे पूरा भरोसा है कि नागकन्या यह जड़ी बूटी नहीं ला सकेगी।"

दशमी की रात धीरचंद्र नदी किनारे पहुँचा तो कौमुदी उसका इन्तज़ार कर रही थी। धीरचंद्र ने शूरगुप्त की बतायी बात कौमुदी से कह दी।

इसके उत्तर में कौमुदी ने छूटते ही कहा, "मेरी आयु एक हज़ार वर्ष की है। अगर मैं तुम्हें नागमूली जड़ी-बूटी ला देती हूँ तो मेरी आयु घटकर आधी रह जायेगी। तुम्हारे बिना मैं अपने जीवन को व्यर्थ मानती हूँ। मैं तुम्हें वह जड़ी बूटी लाकर दूँगी। उस बूटी से मनुष्य से सम्बन्धित सारे रोगों का निवारण होता है।"

अपने वचन के अनुसार नागकन्या कौमुदी ने नागमूली जड़ी लाकर धीरचंद्र को सौंप दी। कुछ ठहरकर कौमुदी ने कहा, "धीरचंद्र, इस जड़ी से तुम्हारी माँ कुछ ही क्षणों में पूर्ण स्वस्थ हो जायेंगी। अब तुम मुझे इसी पूर्णिमा को मिलना। हम दोनों पाताल लोक जायेंगे।"

नागमूली बूटी के प्रयोग से कौशल्या का स्वास्थ्य सुधर गया, यह देखकर भी कौशल्या सन्तुष्ट नहीं हुई, उसने शूरगुप्त के यहाँ सारा हाल कहला भेजा कि अब कोई और उपाय सोचे ।

शूरगुप्त ने सब सुना और धीरचंद्र को समझाते हुए कहा, "बेटा, तुम अपनी माँ को अकेली छोड़कर नागलोक में कैसे जा सकते हो ? तुम नागकन्या से कह दो कि तुम्हारे पिता घर से भाग गये हैं और उनके लौटने तक तुम्हें इन्तज़ार करना होगा ।"

धीरचंद्र ने ऐसा ही किया। धीरचंद्र की बात सुनकर नागकन्या बोली, "तुम्हारे पिता का पता लगाकर उन्हें तुम्हारे परिवार के साथ जोड़ने में मुझे अपनी आयु के सौ वर्ष त्यागने पड़ेंगे। पर मैं तुम्हारे लिए यह त्याग भी करूँगी ।"

नागकन्या कौमुदी ने अब धीरचंद्र को आगामी पंचमी के दिन, नदी किनारे आने के लिए कहा ताकि वे दोनों पाताल-लोक जा सकें ।

धीरचंद्र ने घर लौटकर सारी बात अपनी मां को बता दी । उसी रात धीरचंद्र का पिता भी वापस आगया। कौशल्या पति के आगमन से प्रसन्न तो क्या होती, उलटे पुत्र के वियोग के ख्याल से व्याकुल हो उठी। उस रात शूरगुप्त भी वहाँ मौजूद था। उसने धीरचंद्र को एक और उपाय बताते हुए कहा, "तुम कौमुदी से कहना कि मानव जाति में यह रीति है कि लड़की को पति के घर आकर गृहस्थी चलानी पड़ती है। अगर वह सचमुच तुम्हें प्यार करती है तो विवाह करके तुम्हारे साथ ससुराल में रहे ।"

अपनी बातों के निष्कर्ष में शूरगुप्त ने कहा, "तुम्हारी यह शर्त कभी विफल नहीं हो सकती। नागकन्याएँ मनुष्यों के बीच निवास नहीं कर सकतीं, इसलिए कौमुदी कभी इस बात को स्वीकार नहीं करेगी। तुम इस अन्तिम उपाय को काम में लाओ, देखें, क्या होता है ?"

पंचमी के दिन धीरचंद्र कौमुदी से मिला और उसने पृथ्वी पर बस रही मनुष्य जाति के रीति-रिवाज़ एवं नियमों को समझा दिया ।

नागकन्या कौमुदी सब सुनती रही, फिर कुछ उदास होकर बोली, "अगर मैं तुम्हारे साथ विवाह करके तुम्हारे घर आ जाती हूँ तो फिर

नागलोक के साथ मेरे सारे रिश्ते समाप्त हो जायेंगे। मेरी सारी शक्तियाँ लुप्त हो जायेंगी। यही कारण है कि मैं तुम्हें कुछ समय के लिए अपने साथ ले जाना चाहती हूँ।"

"तुम्हारे आचार-विचार, रीति-नियम मनुष्य जाति के सर्वथा विरुद्ध हैं। तुम मुझे क्षमा कर दो!" धीरचंद्र ने कहा।

"मैं चाहूँ तो तुम्हें जबर्दस्ती ले जा सकती हूँ। पर मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। मैं तुम्हारे लिए अपनी सारी शक्तियां और महिमा त्यागने को तैयार हूँ। तुम जैसा चाहोगे, मैं वैसा ही करूँगी।" नागकन्या कौमुदी ने कहा।

अपनी इस असंभव जैसी शर्त पर नागकन्या की स्वीकृति पाकर धीरचंद्र अवाक रह गया। उसने पूछा, "क्या तुम्हें इस बात का डर नहीं है कि तुम्हारे शक्तिविहीन होने पर मैं तुम्हें कष्ट दे सकता हूँ, तुम्हें सता सकता हूँ!"

"मैं तुम्हें प्रेम करती हूँ। प्रेम करनेवाले को कहीं कोई सताता है?" नागकन्या बोली।

"देखो, मैं तुम्हें इसलिए भी सता सकता हूँ, क्योंकि मेरे पिता गरुड़-वंशज हैं। वे मेरी माता के लिए अपने लोक को त्याग कर पृथ्वी पर आये और यहाँ उन्होंने अपना स्थायी निवास बना लिया। मेरे अन्दर उन्हीं का अंश है।" धीरचंद्र ने नागकन्या की परीक्षा लेते हुए कहा।

"मैं जानती हूँ नागों और गरुड़ों की जाति के बीच जन्मजात वैरभाव है। लेकिन मैं तुम्हें प्राणों से बढ़कर चाहती हूँ। तुम्हारी पत्नी बनने के लिए मैं अपने प्राणों की भी परवाह नहीं करूँगी।" कौमुदी ने अपना दृढ़ निश्चय सुना दिया।

यह उत्तर सुनकर धीरचंद्र विचलित हो उठा, बोला, "नहीं, नहीं, तुम्हें यहाँ रहने की ज़रूरत नहीं है। मैं तुम्हारे साथ नागलोक चलूँगा। वहाँ हम सुखमय जीवन बितायेंगे।"

बेताल ने अपनी कहानी समाप्त कर कहा, "राजन, अपने स्वार्थ के लिए धीरचंद्र ने नागकन्या के समक्ष अनेक शर्तें रखीं। उन सारी शर्तों को नागकन्या ने स्वीकार कर लिया। आख़िरी शर्त के स्वीकार करने पर वह नागकन्या कौमुदी को अपने साथ घर ले जाकर उससे विवाह कर सकता था। पर उसने ऐसा नहीं किया, बल्कि नागकन्या के साथ नागलोक जाना

स्वीकार कर लिया। कार्य की सफलता सामने होने पर भी धीरचंद्र ने जो विपरीत व्यवहार किया, क्या वह उसकी मूढ़ता को सूचित नहीं करता ? इस सन्देह का समाधान आप जानकर भी न देंगे तो आपका सिर फूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा ।''

विक्रमार्क ने उत्तर देते हुए कहा, ''तुम जिन शर्तों की बात कर रहे हो, वे सब स्वार्थ से प्रेरित थीं, शूरगुप्त के द्वारा कल्पित। उन सब शर्तों-नियमों को नागकन्या ने स्वीकार कर लिया। नागकन्या के प्रेम को देखकर धीरचंद्र दुनिया के रंग-ढंग को भलीभाँति समझ गया। उसके माता-पिता, मामा सबके लिए अपना-अपना स्वार्थ प्रमुख था। वे धन को ही महत्व देते थे। धन के अभाव में उसका पिता अपने परिवार को संकट में छोड़कर भाग गया। धन के अभाव में मुँह न दिखानेवाला शूरगुप्त धीरचंद्र के सम्पन्न होने पर उसका हितैषी बन बैठा। उधर नागकन्या कौमुदी ने न केवल उसे धन दिया, बल्कि उसके परिवार की भलाई के लिए अपनी आयु का एक बड़ा भाग भी त्याग दिया। फिर भी उन लोगों ने नागकन्या के प्रति कोई कृतज्ञता ज़ाहिर न की, बल्कि उसे धोखा देने की कोशिश की। धीरचंद्र ने उसे इस बात का भय दिखाया कि उसके साथ विवाह करके पृथ्वी पर रहते हुए उसे तमाम यातनाओं का सामना करना पड़ सकता है। फिर भी नागकन्या ने अपने प्राणों तक का मोह छोड़कर उसके साथ विवाह करना स्वीकार किया। कौमुदी के इस दृढ़ निश्चय ने धीरचंद्र के हृदय को पिघला दिया। वह समझ गया कि कौमुदी उसे कितना हृदय से प्रेम करती है। वह यह भी समझ गया कि उसके रिश्तेदार भलाई का बदला बुराई से देना चाहते हैं

इस ज्ञान के कारण ही उसने नागकन्या के साथ नागलोक में जाना स्वीकार किया, किसी मूढ़ता के कारण नहीं ।''

राजा विक्रमार्क के इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य होकर पुनः पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

रोग-निदान

कृपानन्द वैद्य ने अपनी चिकित्सा के लिए अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। वे सबसे पहले रोगी की नाड़ी देखते, इसके बाद लगभग सभी रोगियों से यह सवाल करते, "तुमने पिछले चार-पाँच दिनों में क्या आहार लिया है ? कौन से फल साग-सब्ज़ी आदि खाये हैं ? तुम्हारे आहार में ही कोई ऐसी वस्तु रही है, जिसके कारण तुम बीमार होगये हो !"

इसके बाद कृपानन्द वैद्य बड़े ध्यानपूर्वक रोगियों का उत्तर सुनते। क्या खाया और क्या पिया है ? फिर कहते, "अच्छा, अच्छा ! मैं समझ गया। लो, यह दवा खाना, ठीक हो जाओगे !" इसके बाद वे रोगी के हाथ में दवा की पुड़िया थमा देते और उनसे पैसे ले लेते।

एक बार कृपानन्द वैद्य के यहाँ रत्नाचारी नाम का एक युवक चिकित्सा सीखने की इच्छा से आया। उसने काफी दिन तक अपने गुरु के रोग-निदान का परिशीलन किया, फिर एक दिन उनसे पूछा, "गुरु जी, आप नाड़ी देखने के उपरान्त हर रोगी से उसके खान-पान के बारे में पूछते हैं कि पिछले चार-पाँच दिन में उसने क्या सब्जी-फल आदि खाये हैं ? क्या रोग-निदान करने के लिए इसकी जानकारी आवश्यक है ?"

यह सवाल सुनकर कृपानन्द ने मुस्करा कर कहा, "देखो, रोग का पता तो उनकी नाड़ी से लग जाता है। खान-पान, सब्जी-तरकारी से तो मैं यह पता लगाता हूँ कि उस आदमी की आर्थिक स्थिति कैसी है और उसी के आधार पर उससे औषधि का पैसा लेता हूँ।"

हमारे मन्दिर

कालीघाट

बहुत समय पहले की बात है, आत्माराम नाम का एक ब्राह्मण घने वन को स्पर्श कर बह रही गंगा के तट पर प्रति दिन जाता और वहाँ कुछ देर ध्यान में व्यतीत करता। वह उस वन के निकटवर्ती एक गाँव में रहता था।

एक दिन आत्माराम को ध्यान करते हुए कुछ अधिक समय बीत गया। शाम होचुकी थी। ध्यान समाप्त कर जब वह उठा तो उसे गंगा की धारा में से एक विचित्र प्रकाश-रेखा उभरती हुई दिखाई दी। पर चारों तरफ़ अंधेरा गहरा होने लगा था, इस कारण वह उस प्रकाश-रेखा के बारे में जानकारी प्राप्त नहीं कर सका।

घर लौटने के बाद आत्माराम उस रात को जागता ही रहा। वह बराबर उस प्रकाश-रेखा के बारे में विचार कर रहा था। दूसरे दिन सुबह ही सुबह वह गंगा-तट पर पहुँचा। प्रकाश-रेखा इस समय भी ज्यों की त्यों दिखाई पड़ रही थी। वह पास गया तो उसने देखा, गंगा-जल में एक शिला हस्त चमक रहा था।

आत्माराम उस शिलाहस्त को अपने घर ले गया। उस रात उसे एक अद्भुत स्वप्न दिखाई दिया। स्वप्न इस प्रकार था: यज्ञ में सतीदेवी को आया देख दक्ष क्रोधित हो उठे। उन्होंने सती की निंदा की, उनका अपमान किया।

वह सहन नहीं कर पायीं तो दुखातिरेक के कारण अचेत होकर नीचे गिर गयीं और प्राण छोड़ दिये। शिव ने सती की मृत देह को कंधे पर डाला और उन्मत्त की भाँति निरुद्देश्य सर्वत्र विचरण करने लगे। किसकी शक्ति थी कि उनको रोकता ?

अन्त में विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र का प्रयोग किया। सुदर्शन चक्र ने सती की देह के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उनका एक-एक अंग एक-एक प्रदेश में जा गिरा। उनका एक हाथ वन-प्रदेश में बह रही गंगा की धारा में गिर गया।

स्वप्न देखकर आत्माराम समझ गया कि उसे जो शिलाहस्त प्राप्त हुआ है, वह सतीदेवी का है। उसने उस हस्त को काली की प्रतिमा के अन्दर प्रतिष्ठित किया और उस प्रतिमा को वन में एक कुटी निर्माण कर उसके अन्दर स्थापित कर दिया। आत्माराम वहीं रहकर देवी का आराधन करने लगा।

देवी का यह स्थान वन के अन्दर था, इस कारण बहुत काल तक किसी को उसका पता नहीं चला। एक बार एक धर्मनिष्ठ ज़मींदार गंगा में नौका से यात्रा कर रहे थे तो उन्हें वन के मध्य भाग से शंखनाद सुनाई दिया।

ज़मींदार तुरंत तट पर आये और वन के अन्दर पहुँचे। उन्होंने देखा, एक स्थान पर काली की मूर्ति विराजमान है और उसके सामने कुछ मुनि बैठे हुए हैं। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने काली की प्रतिमा के सम्मुख प्रणिपात किया।
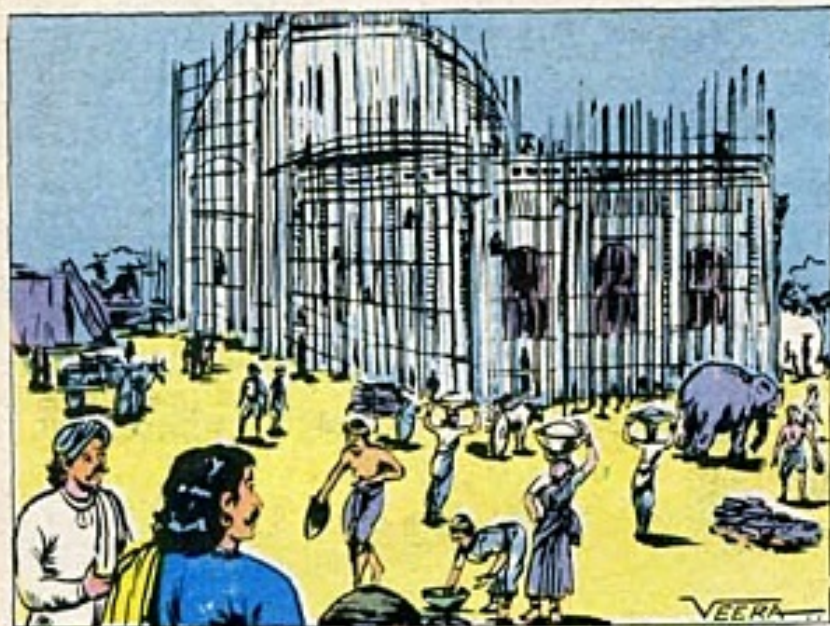
इसके बाद ज़मींदार ने मुनियों से अनुमति ली और काली देवी के लिए एक मन्दिर बनवाया । उस मन्दिर में भक्तों का आगमन शुरू हो गया । कालान्तर में मन्दिर का निकटवर्ती प्रदेश स्वच्छ हो गया । वन का चिह्न न रहा । पुजारियों तथा व्यापारियों ने मन्दिर के चारों तरफ़ अपने आवास-गृह बना लिये ।

मन्दिर के निर्माण की चर्चा जब आस पास फैली तो काफ़ी संख्या में लोगों का आना-जाना शुरू हो गया । अक्सर वहाँ पर जुलूस निकलते । उत्सव और समारोह होते । अट्ठारहवीं शती तक आते-आते यह स्थान कालीघाट नाम से विख्यात हुआ ।
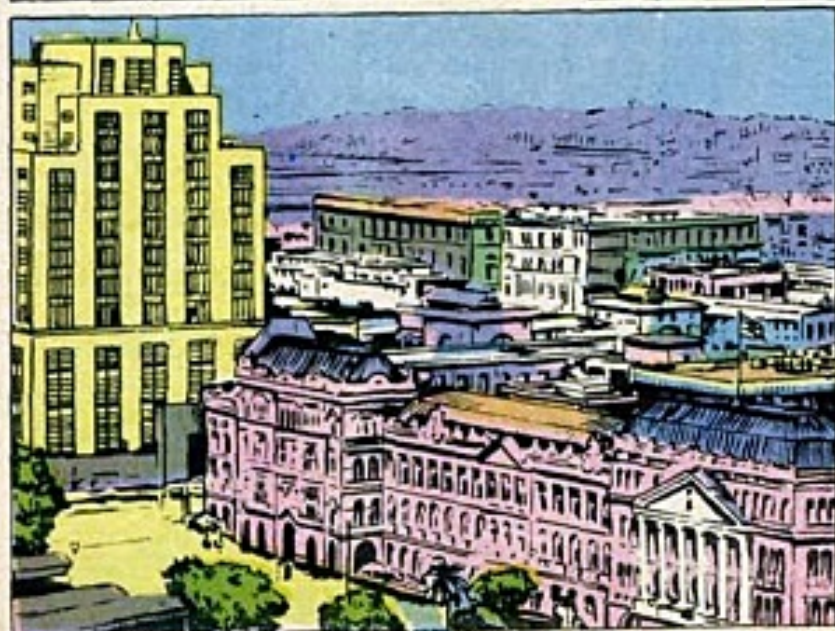
कालीघाट को ही कालान्तर में कालिकट और कलकत्ता पुकारा जाने लगा । ईस्ट इंडिया कम्पनी के आगमन से कलकत्ता का विकास द्रुत गति से हुआ । आज कलकत्ता हमारे देश के महानगरों में से एक है ।

विचित्र पत्नी

बग़दाद शहर में सिदी नुमान नाम का एक युवक रहता था। उसने व्यापार में खूब धन कमाया था और बड़े ठाठ-बाट से रहता था। एक बार उसने आशना नाम की एक अद्भुत सुन्दर तरुणी देखी। वह उस पर मुग्ध होगया और उसके परिवार की कोई भी जानकारी लिये बिना उसने उससे शादी कर ली। इस मामले में नुमान ने अपने बन्धु-बान्धवों एवं रिश्तेदारों से भी कुछ नहीं पूछा।

इसके बाद नुमान ने एक बड़ा मकान ख़रीदा और उसमें अपनी पत्नी आशना के साथ निवास करने लगा।

दो-चार दिन खुशी-खुशी बीत गये। नुमान को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि आशना थाली पर बैठ तो जाती है पर खाती कुछ नहीं है। नुमान ने उससे कई बार खाने का अनुरोध किया पर उसने उसकी बात पर कोई ख्याल नहीं किया।

इसी तरह दस दिन बीत गये। आशना ने खाना नहीं खाया।

नुमान ने देखा, आहार न लेने पर भी उसकी पत्नी में किसी प्रकार की कोई कमज़ोरी नहीं है और न तो उत्साह की ही कमी है।

नुमान के मन में यह शंका हुई कि कहीं वह उसकी आँख बचाकर तो खाना नहीं खाती। लेकिन उसे ऐसा करने की क्या ज़रूरत है?

एक दिन नुमान ने मन ही मन यह निश्चय किया कि वह इस बात का पता लगा कर रहेगा कि रात के समय उसकी पत्नी क्या करती है? रात हुई तो उसने बिस्तर पर लेटकर आँखें मूंद लीं और सोने का स्वांग रच पड़ा रहा। ठीक आधी रात के समय आशना बिस्तर से उठी और दबे पाँव कमरे से बाहर निकल गयी। नुमान भी धीरे से उठा और बिना किसी आहट के उसका पीछा करने लगा।

आशना घर से निकल उस अंधेरे में ही नगर

'अरब की रातों' से एक कहानी

आया । उसने पहले की तरह आँखें मूंद लीं और सोने का अभिनय करने लगा ।

एक घंटे बाद आशना भी घर लौट आयी । नुमान के अन्दर यह द्वंद शुरू होगया था कि आशना को अच्छे रास्ते पर कैसे लाया जाये ?

दूसरे दिन जब वे खाने के लिए बैठे, तब नुमान ने आशना से कहा, "तुम जैसा खाना चाहती हो, उसे ख़रीदने के लिए मेरे पास काफ़ी पैसा है । तब तुम आधी रात जागकर अंधेरे में श्मशान तक क्यों जाती हो ?"

इतना सुनना था कि आशना तमक कर उठ खड़ी हुई । उसकी आँखें अंगारों की तरह दहकने लगीं । वह समझ गयी कि नुमान पर उसका रहस्य खुल गया है । उसने झट से हाथ में पानी लिया और मंत्र फूँक कर नुमान पर छिड़क दिया ।

मंत्र जल के प्रभाव से नुमान उसी क्षण कुत्ता बन गया । अपने प्राण बचाने के ख्याल से वह घर से बेतहाशा भाग निकला ।

आशना ने कुत्ते की गरदन किवाड़ों के बीच भींच देनी चाही, ताकि उसके प्राण ही निकल जायें, पर तब तक उसकी गरदन बाहर निकल चुकी थी । किवाड़ों में कुत्ते की पूँछ फिर भी फँस गयी और बीच से कट गयी ।

उस पूँछ कटे कुत्ते को भागते हुए देख गली के कुत्ते उसका पीछा करने लगे । उनके हमले से बचने के लिए वह कुत्ता एक दुकान में घुस गया ।

से दूर एक श्मशान की ओर चल पड़ी । नुमान ने देखा, श्मशान से लगीहुई एक उजाड़ टूटी हुई दीवार थी, जिस पर एक डायन बैठी थी । आशना को देखते ही डायन ने अपना हाथ बढ़ाया ।

आशना ने खुशी-खुशी डायन का हाथ पकड़ लिया और दीवार पर चढ़ गयी । दोनों दीवार के उस तरफ़ कूद कर आँखों से ओझल होगयीं ।

इस दृश्य को देख नुमान के रोंगटे खड़े होगये । वह इस बात की कल्पना भी नहीं कर सका कि दीवार के उस पार वे दोनों कैसा खाना खा रही हैं ।

इसके बाद नुमान वहाँ से सीधा घर लौट

दुकानदार दयालु आदमी था, उसने दूसरे कुत्तों को भगाकर उसकी रक्षा की। कुत्ते ने दुम हिलाकर मालिक के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

धीरे-धीरे वह कुत्ता दुकानदार का स्नेह पात्र होगया और वहीं अपना वक्त काटने लगा।

एक दिन उस दुकान में एक औरत सौदा लेने आयी। माल ख़रीदकर क़ीमत चुकायी। दुकानदार ने कहा, "बीबी जी, इनमें एक सिक्का खोटा है।"

उस औरत को दुकानदार पर बड़ा गुस्सा आया। उसे नाराज़ देख दुकानदार ने कहा, "आप व्यर्थ ही क्यों नाराज़ हो रही हैं? इतना तो मेरा कुत्ता भी बता सकता है कि यह खोटा सिक्का है।"

"अरे वाह, तो फिर इस कुत्ते से कहिये न कि खोटा सिक्का बता दे!" यह कहकर उस औरत ने अपने हाथ के सारे सिक्के ज़मीन पर पटक दिये।

कुत्ते ने अपने पंजों से अच्छे सिक्कों को अलग चुन लिया। पर खोटे सिक्के को छुआ तक नहीं।

कुत्ते की अक्लमंदी देख उस औरत के अचरज का ठिकाना न रहा।

इसके बाद वह दुकानदार अपने कुत्ते की अक्लमंदी की तारीफ़ करने लगा, "मेरा कुत्ता नक़ली सिक्कों का पता देने में ज़रा भी नहीं चूकता। कुछ व्यापारी तो ऐसा करते हैं कि जानबूझ कर अच्छे सिक्कों में खोटे सिक्के मिला देते हैं और इस कुत्ते की जांच करने के लिए इस के सामने रख देते हैं। कुत्ता कुछ ही क्षणों में खोटे सिक्कों को अलग निकाल कर रख देता है ऐसे कुत्ते इस दुनिया में विरले ही होते हैं कोई चाहे तो खुद इस की जांच कर सकते हैं।"

एक दिन दोपहर के समय दुकानदार घोड़ागाड़ी से अपना माल उतरवा रहा था कि एक बूढ़ी वहाँ आयी। उसने कुत्ते को अपने साथ चलने का इशारा किया। कुत्ता उसके पीछे हो लिया।

बूढ़ी घर पहुँच कर अपनी बेटी से बोली, "बेटी, तुमने कभी किसी कुत्ते के द्वारा खोटे सिक्कों का पता लगाने की बात सुनी है? यह तो अत्यन्त आश्चर्य की बात है न? मैं ने तो ऐसी

बात कभी नहीं सुनी थी। मुझे तो ऐसा लगता है कि किसी मांत्रिक या तांत्रिक ने मंत्र फूँक कर मनुष्य को कुत्ते का रूप दे दिया है। तुम इसकी जाँच करो !"

बूढी की बात सुनकर बीस वर्षीय एक युवती घर से बाहर आयी और कुत्ते को परख कर देखने लगी। इसके बाद सुराही से उसने थोड़ा सा पानी लिया और मंत्र फूँक कर कुत्ते पर छिड़क दिया।

उसी क्षण कुत्ते का रूप एक दम बदल गया और नुमान ने अपने पूर्व रूप को प्राप्त किया।

नुमान की आँखों से खुशी के आँसू बह निकले और उसने बड़े कृतज्ञ भाव से उस युवती को प्रणाम किया। पूछने पर उसने सविस्तार बता दिया कि कुत्ते का रूप उसे कैसे मिला था।

वह युवती मंत्र-तंत्र में प्रवीण थी। पर वह उन मंत्रों का उपयोग दूसरों के उपकार के लिए ही करती थी।

इसके बाद उसने नुमान को एक पात्र में थोड़ा सा मंत्र-जल दिया और उसे उसके उपयोग की विधि समझा दी।

नुमान उसी समय अपने घर की ओर चल पड़ा। पर उसे घर में आशना दिखाई नहीं दी। वह एक कुर्सी पर बैठकर उसका इन्तज़ार करने लगा।

नुमान के मन में तरह-तरह की आशंकाएँ घर करने लगीं। उसे इस बात का डर था कि कहीं आशना उसके मन की बात को भांप कर हानि कर बैठे। उस का प्रत्येक पल एक युग के समान बीतने लगा।

थोड़ी देर बाद आशना आ पहुँची। नुमान को देख वह चकित रह गयी। उसने उस पर पुनः मंत्र-प्रयोग करने के लिए पानी के पात्र पर दृष्टि डाली। पर इसी बीच नुमान ने उस पर मंत्र-जल छिड़क दिया।

उसी क्षण वह अद्भुत सुन्दरी तरुणी आशना एक बछेड़ी के रूप में बदल गयी और देखते-देखते छलांग मार कर वह दूर कहीं भाग गयी।

शिव पुराण

सगर के पुत्र उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ अश्व अचानक अदृश्य हो गया था। वे उस स्थान को खोदने लगे। वे पाताल तक खोदते चले गये। वहाँ उन्हें तपस्यालीन महामुनि कपिल दिखाई दिये। उनके समीप ही यज्ञ का अश्व खड़ा था।

सगर-पुत्रों ने सोचा कि महामुनि कपिल ने ही अश्व को चुराया है। वे महामुनि को संत्रास देने लगे। बाधा पाकर कपिल मुनि ने आँखें खोलीं और क्रोधभरी दृष्टि से सगर-पुत्रों को देखा। उसी क्षण सगर के साठ़ हज़ार पुत्र जलकर एक साथ साठ हज़ार राख की ढेरियां बन गये।

नारदमुनि ने यह समाचार महाराजा सगर को सुना दिया। सगर ने यज्ञ के अश्व को छुड़ा लाने का कार्य असमंजस के पुत्र अंशुमान को सौंपा।

अंशुमान उसी समय पाताल-लोक में गया और कपिल मुनि के पास पहुँचकर प्रणाम करके खड़ा रहा।

कपिल मुनि अंशुमान के व्यवहार पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले, "वत्स, तुम इस अश्व को अपने साथ ले जाओ! लेकिन अपने दादा से कहना कि उनके पुत्र यहाँ भस्म हो गये हैं।"

अंशुमान ने मुनि को पुनः प्रणाम कर पूछा, "महात्मन्, हमारे मृत पिताओं को स्वर्ग की प्राप्ति कैसे होगी? इसके लिए कृपा करके कोई मार्ग बताइये!"

"तब तो सुनो, अनेक जन्मों के बाद इनके पापों का निवारण होगा। तुम्हारा पौत्र इन्हें मुक्ति

पृथ्वी पर गंगा का अवतरण हो सके, इसके लिए अंशुमान तपस्या करने लगे। तपस्या के पूर्ण होने से पहले ही अंशुमान का देहान्त हो गया।

राजा दिलीप के पुत्र भरत ने अपने दादाओं की दुरवस्था सुनकर उनके उद्धार का संकल्प किया और ब्रह्मा को लक्ष्य कर कठिन तपस्या की।

ब्रह्मा ने प्रत्यक्ष होकर उन्हें वरदान दिया कि वह धर्मच्युत न होता हुआ अपनी मनोकामना के अनुरूप जीवन यापन करेगा।

इसके पश्चात् भगीरथ ने गंगा के प्रति दीर्घकाल तक तपस्या की। गंगादेवी ने प्रत्यक्ष होकर भगीरथ की कामना सुनी और प्रश्न किया, "वत्स, जब मैं स्वर्ग से पृथ्वी पर अवतरित होऊँगी तो मेरे वेग को कौन रोक पायेगा? मैं तो पृथ्वी को फोड़कर सीधे पाताल में उतर जाऊँगी।"

भगीरथ ने निवेदन किया, "माता, समस्त विश्व को अपने अन्दर धारण करनेवाले शिव भगवान आप को धारण करेंगे।"

"वत्स, यदि मैं पृथ्वी पर अवतरित हो गयी तो सारे पापी अपने पापों को मेरे भीतर प्रक्षालित कर लेंगे। उन अन्दर छूटे हुए पापों से मैं कैसे मुक्त हो पाऊँगी?" गंगा ने पुनः प्रश्न किया।

"देवि, जब ऐसे पुण्यात्मा लोग आपके जल में स्नान करेंगे जो समस्त पापों को हरने

प्रदान करेगा।" कपिल मुनि ने अंशुमान से कहा।

मुनि की आज्ञा लेकर अंशुमान लौटा और उसने यज्ञाश्व को महाराजा सगर को सौंप दिया। सगर ने अश्वमेध यज्ञ समाप्त कर अंशुमान का राज्याभिषेक किया।

राज्य-सिंहासन पाने के बाद भी अंशुमान के हृदय से अपने पिताओं की मुक्ति की चिंता न गयी। वे रात-दिन उपाय का विमर्श करने लगे।

एक बार गरुड़ ने उनसे कहा, "महाराज, अगर आपके पिताओं की भस्म पर गंगा-जल प्रवाहित कर दिया जाये तो उन्हें मुक्ति प्राप्त होगी।"

वाले हरि को हृदय में धारण करते हैं तो पापियों द्वारा विसर्जित पाप स्वयं ही नष्ट हो जायेंगे ।" भगीरथ ने उत्तर दिया ।

"अच्छा, मैं तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करूँगी । तुम भगवान शिव को इस बात के लिए उद्यत कर लो कि स्वर्ग से अवतरित होते समय वे मुझे धारण कर लेंगे ।" यह कहकर गंगा अदृश्य हो गयीं ।

भगीरथ ने शिव को लक्ष्य कर बड़ी कठिन तपस्या की । शिव प्रत्यक्ष हुए तो भगीरथ ने उनके सम्मुख अपनी आकांक्षा का निवेदन किया । शिव ने गंगा को धारण करने की स्वीकृति दे दी ।

आकाश से गंगा सीधे शिव की जटाओं में उतरीं और वहाँ से निकल कर पृथ्वी पर प्रवाहित होने लगीं ।

भगीरथ अत्यन्त वेग से आगे बढ़ते गये और गंगा उनके पीछे आती गयीं । फिर सगर-पुत्रों की भस्मराशि पर प्रवाहित हो वे समुद्र बन गयीं । इसीलिए समुद्र का नाम सागर भी है ।

स्वायंभु मनु के काल में साठ वर्ष तक वर्षा न हुई । फलस्वरूप दारुण अकाल पड़ा । जन-जन्तुओं की अपार क्षति हुई । सारा जीवन अस्त-व्यस्त हो गया । यह देखकर ब्रह्मा ने किसी ऐसे व्यक्ति को राजा बनाने का विचार किया जो इस विश्व को संयोजित कर सके । उन्हें मनुवंश के रिपुंजय नाम के क्षत्रिय कुमार की याद आयी । वह विद्वान भी था और ऊँचे चरित्र का था ।

ब्रह्मा ने रिपुंजय से कहा, "वत्स, मैं तुम्हें पृथ्वी लोक का अधिकार देता हुँ । तुम दिवोदास नाम से इस पृथ्वी का शासन करो । वासुकि की पुत्री अनंगमोहिनी तुम्हारी अर्धांगिनी बनेगी ।"

रिपुंजय ने विनीत स्वर में उत्तर दिया, "आप मुझे एक वर प्रदान करें तो मैं आपके संकल्प के अनुसार पृथ्वी का भार ग्रहण करूँगा । मेरी इच्छा है कि पृथ्वी पर अधोलोक एवं ऊर्ध्वलोक का कोई प्राणी न हो ।"

ब्रह्मा ने स्वीकार किया और यह समाचार काशी विश्वेश्वर को भी सुना दिया । विश्वेश्वर ने

अपनी सम्मति दी । ब्रह्मा ने रिपुंजय का राज्याभिषेक किया और स्वयं सत्य लोक को चले गये ।

रिपुंजय दिवोदास नाम से राजा बने । उन्होंने यह ढिंढोरा भी पिटवा दिया कि पृथ्वी पर कोई देवता या पाताल वासी निवास न करे ।

यह ढिंढोरा सुनकर पृथ्वी पर चारों दिशाओं में फैले देवता काशी विश्वनाथ के पास दौड़े आये । शिव ने उनसे कहा, "मुझसे पूछकर ही ब्रह्मा ने दिवोदास को यह वर दिया था । चलो, हम सब मंदार पर्वत पर चलते हैं ।"

इसके बाद पृथ्वी पर देवताओं का संचार बंद हो गया । मन्दिरों में उनकी पूजा नहीं रही । दिवोदास ने काशी को राजधानी बनाकर आठ हज़ार वर्ष तक बिना किसी त्रुटि के शासन किया । दीर्घकाल से पृथ्वी को ही आश्रय बनाकर रहने वाले और इसी को अपनी जन्मभूमि एवं मातृभूमि माननेवाले छोटे-छोटे देवता और दानव दिवोदास की सेवा में लग गये ।

पृथ्वी पर अपना प्रभाव खोकर देवताओं को बड़ा दुख हुआ । उन्होंने अपने गुरु बृहस्पति से पूछा, "गुरुदेव, दिवोदास को राज्य-च्युत करने का कोई उपाय है ?"

बृहस्पति ने कहा, "अग्नि, वायु और वरुण हमारी जाति के ही हैं । अगर वे अपनी शक्तियों को वापस ले लें तो पृथ्वी का जीवन स्तम्भित हो जायेगा । सबसे पहले अग्नि से कहो कि वह

असहयोग करे !"

अग्नि के असहयोग के परिणामस्वरूप काशी में कहीं आग नहीं सुलगी, खाना नहीं बना । केवल दिवोदास को धूप की मदद से भोजन बनाकर खिलाया गया । दिवोदास को तो खाना मिल गया, लेकिन प्रजा में हाहाकार मच गया । सब स्थिति समझकर दिवोदास ने कहा, "यह तो देवताओं की धृष्टता है । आप लोग बिलकुल हिम्मत न हारें । मैं अपनी तपस्या के बल पर आप लोगों को अग्नि, वायु तथा वर्षा प्रदान करूँगा ।"

दिवोदास ने अपने वचन का पालन किया । देवताओं की चाल सफल न हो सकी ।

लेकिन विश्वनाथ को काशी का वियोग

असह्य हो गया। उनके मन में भी दिवोदास के शासन को अंत करने का विचार आया। उन्होंने चौंसठ सिद्ध योगिनियों को बुलाकर आदेश दिया, "तुम लोग छद्मवेश में काशी जाओ और वहाँ की स्त्रियों के पातिव्रत्य-धर्म तथा पुरुषों के सदाचरण को नष्ट कर दो। तभी दिवोदास का पतन होगा।"

सिद्ध योगिनियों ने शिव के आदेश का पालन किया, पर वे न तो स्त्रियों के पातिव्रत्य-धर्म को भंग कर सकीं और न पुरुषों को दुराचार में लगा सकीं। तब शिव ने सूर्य से कहा, "तुम काशी जाओ और कोई भी नीति अपनाकर दिवोदास को धर्मच्युत कर दो!"

सूर्य अनेक वेश धारण कर काशी में विचरण करने लगे कि दिवोदास में कोई त्रुटि मिल जाये। पर सूर्य को न केवल दिवोदास के अन्दर बल्कि उनकी प्रजा के भीतर भी कोई दोष या अधर्म दिखाई नहीं दिया। अपना कार्य संपन्न किये बग़ैर सूर्य वापस नहीं जाना चाहते थे, इसलिए वे काशी में ही रह गये।

कुछ समय और निकला। तब शिव ने ब्रह्मा को बुलाकर कहा, "मैंने दिवोदास को धर्मच्युत करने के लिए सिद्ध योगिनियों को भेजा। फिर सूर्य को इस कार्य में नियुक्त किया तो वे काशी में ही रह गये हैं। कोई लौट कर नहीं आये। इसलिए इस बार अब आप जाइये!"

ब्रह्मा ने शिव की बात मान ली और वे एक वृद्ध ब्राह्मण के वेश में काशी पहुँचे। राजसभा में सिंहासनासीन दिवोदास को उन्होंने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया और बोले, "राजन, आप अनुमति दें तो मैं काशी नगरी में यज्ञ करना चाहता हूँ। पर विश्वनाथ के यहाँ न होने से इस नगरी की शोभा घट गयी है। यदि आप भगवान शिव जी को बुला सकें तो अति उत्तम होगा।"

दिवोदास मौन बैठे रहे। उन्होंने शिव को बुलवाने के सम्बन्ध में अपना कोई मन्तव्य नहीं दिया। इस पर ब्रह्मा ने काशी में रह कर लगातार दस अश्वमेध-यज्ञ किये और स्वयं भी वहीं पर रह गये।

शरीर का मूल्य

उदयगिरि के राजा उदयसेन बड़े धर्मात्मा पुरुष थे । उन्होंने अपने राज्य में किसी भी व्यवसाय अथवा धंधे में लगे हुए लोगों के सुख एवं आराम के लिए समुचित व्यवस्था की थी । जिनके पास कोई काम नहीं था, उनके लिए उन्होंने काम का प्रबन्ध किया, ताकि कोई दारिद्र्य का शिकार न हो । आत्मनिर्भरता का भाव विकसित होने के कारण सारे देश में याचक-वृत्ति का अभाव हो गया । केवल वे ही लोग भीख माँग कर गुज़ारा करते थे, जो काम करने की स्थिति में न थे या बूढ़े और विकलांग थे ।

उदयगिरि के भिखारियों में एक शीतल नाम का युवक भी था । जब से उसने होश संभाला, भीख को ही अपना धंधा समझा । क्योंकि उदयगिरि में भिखारियों को अधिक प्रोत्साहन नहीं दिया जाता था, इसलिए इस पेशे की स्थिति बदतर होती जा रही थी । शीतल को विशेष रूप से यह स्थिति अखरने लगी थी ।

एक दिन ऐसा आया कि शीतल को दोपहर तक एक अन्न का दाना नहीं मिला । जब भूख बहुत अधिक सताने लगी तो वह एक पेड़ की छाया में बैठकर रास्ता चलनेवालों से भीख माँगने लगा । पर किसी ने उसकी तरफ़ देखा तक नहीं । उसने सोचा कि शायद भगवान का ध्यान करने से उस पर किसी को दया आजाये । इसलिए वह ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने लगा, "हे परमात्मा, इस ग़रीब को थोड़ी भीख दे ! हे दीनदयाल, भूख से पीड़ित व्यक्ति को रोटी का एक टुकड़ा दे ! हे दयामय, इस दीन को थोड़ा दान दे !"

पर किसी ने भी उसकी पुकार नहीं सुनी । भूखा तो वह पहले ही था, चीखने-चिल्लाने से उसका होश जाता रहा । वह भगवान पर क्रुद्ध होकर गालियां देने लगा, "अरे भगवान, तू कहाँ मर गया ? कहते हैं जो जन्म देता है वह

२५ वर्ष पूर्व 'चन्दामामा' में प्रकाशित एक कहानी

भोजन भी देता है । तूने मुझे जन्म दिया, फिर खाना क्यों नहीं देता ? तेरी माँ की कोख जल जाये !"

उस समय राजा उदयसेन घोड़े पर राजपथ से गुज़र रहे थे । उन्होंने भिखारी की बातें सुनीं तो घोड़ा रोक दिया और उतर कर भिखारी के पास जाकर पूछा, "अरे, तू किसको गालियां दे रहा है ?

"और किसे ? उस पापी भगवान को !" शीतल ने जवाब दिया ।

"भगवान की पूजा की जाती है, निन्दा नहीं । बता, भगवान ने तेरे साथ क्या अन्याय किया है ?" राजा उदयसेन ने पूछा ।

"और करने को क्या रह गया है ? सुबह से भूखा हूँ। कोई भीख तक नहीं देता !" भिखारी शीतल ने जवाब दिया ।

"अगर तू खाना चाहता है तो मैं दे दूँगा। मैं इस देश का राजा हूँ । पर अगर तू मुझे अपना एक हाथ काटकर दे दे तो मैं तुझे एक हज़ार रुपया दूँगा । अगर एक पैर दे दे तो दो हज़ार रुपया दूँगा । अगर तू अपनी आँखें दे दे तो मैं तुझे अपना आधा राज्य दे दूँगा ।" राजा उदयसेन ने कहा ।

"तुम्हारा धन मुझे नहीं चाहिए । मैं तुम्हें कुछ भी नहीं दूँगा ।" भिखारी शीतल ने जवाब दिया ।

"इसका मतलब है कि तुम बड़े ही भाग्यवान हो । तुम्हारे पास एक हज़ार रुपये से अधिक मूल्यवान हाथ, दो हज़ार से बढ़कर पैर तथा आधे राज्य से अधिक मूल्य की आँखें हैं। भगवान ने तुम्हें इतनी क़ीमती चीज़ें दीं और तुम उनकी पूजा तो क्या उलटे निन्दा करते हो ? मूर्ख, जा, भगवान से प्राप्त मूल्यवान हाथ-पैरों का उपयोग करके अपना पेट भर ! आगे कभी भीख मत माँगना ।" इस प्रकार राजा उदयसेन ने शीतल को उसके कर्त्तव्य के प्रति सचेत किया और वहाँ से चले गये ।

उसी क्षण से शीतल ने भीख माँगना छोड़ दिया और शारीरिक श्रम करके अपनी आजीविका कमाने लगा ।

बौना मांत्रिक

भीमराज चौबीस वर्ष का एक सुन्दर युवक था। उसके पास जमापूँजी के नाम पर तो कुछ न था, पर कचहरी में वह एक अच्छे पद पर था। एक बार वह कचहरी के काम से पास के गाँव में गया था। शाम को जब घर लौटा तो नौकरानी ने उसे ख़बर दी कि वीणावती ने टीले पर बने मन्दिर में उसे बुलाया है।

वीणावती भीमराज की होनेवाली पत्नी थी। वह अपने पिता की इकलौती बेटी थी। भीमराज के पड़ोस में ही उसका मकान था। वीणावती और भीमराज की सगाई काफी पहले हो चुकी थी। अब केवल विवाह का मुहूर्त निकालना बाकी था। वीणावती ने उसे टीले के मन्दिर में बुलाया है, यह बात भीमराज को बड़ी विचित्र-सी लग रही थी। अगर वीणा को उसे कोई ख़ास बात बतानी थी तो वह उसे घर पर भी बता सकती थी। इसके लिए उसने उसे मन्दिर में क्यों बुलाया ?

भीमराज को आता देख वीणावती शिला पर से उठी और उसके पास आकर आँखें नीची कर खड़ी हो गयी। भीमराज ने मंद-मंद मुस्काते हुए पूछा, "क्या कोई विशेष समाचार है ? क्या तुम्हारे पिता ने हमारे विवाह का मुहूर्त निश्चित करवाया है ?"

वीणावती अपने दुख पर नियंत्रण करती हुई बोली, "हाँ, हाँ, परसों ही विवाह का मुहूर्त है। लेकिन दूल्हा तुम नहीं हो, कोई और है।"

भीमराज ने चकित होकर पूछा, "बताओ तो, बात क्या है ?"

वीणावती ने सारा वृत्तान्त उसे सुनाते हुए कहा, "कल मेरे पिता के एक बचपन के मित्र हमारे घर अचानक आ पहुँचे। सुना है कि उन्होंने नौका-व्यापार में लाखों रुपये कमाये हैं। उनके साथ उनका पुत्र भी आया था। उसने मुझे पसन्द किया। शुभ मुहूर्त परसों पड़ रहा है, इसलिए मेरे पिता इस लग्न में मेरा विवाह कर

कमला गर्ग

देना चाहते हैं । उन्होंने यह रिश्ता पक्का कर दिया है ।"

वीणावती क्षण भर रुक कर फिर बोली, "उन लोगों के चले जाने के बाद मैंने इस विवाह को अस्वीकार किया तो मेरे पिता मुझे डाँटने लगे, बोले, 'तुम चुप रहो ! भीमराज के पास जमा के नाम पर एक कौड़ी भी नहीं है । उसकी नौकरी का भी कोई भरोसा नहीं । मैं ऐसे कई लोगों को जानता हूँ जो कचहरी की नौकरी से हाथ धो बैठे हैं । मेरे मित्र के पास लाखों की सम्पत्ति है । अगर तुमने उनके पुत्र के साथ विवाह स्वीकार न किया तो मैं घर छोड़कर देशाटन पर निकल जाऊँगा' ।"

यह वृत्तान्त सुनकर भीमराज क्रोधावेश में आगया, बोला, "ऐसी बात है ! मैं तुम्हारे पिता से बात करूँगा ।"

वीणावती घबराकर सिर हिलाकर बोली, "नहीं, नहीं, तुम ऐसा मत करना । मेरे पिता हठी और क्रोधी हैं । यदि कुछ वाद-विवाद हुआ तो वे सचमुच ही घर छोड़कर चले जायेंगे ।" यह कहकर वीणावती घर चली गयी ।

इस घटना से भीमराज बहुत ही व्याकुल हो उठा । उसने उस रात घर न लौटने का निश्चय कर लिया । वह काफ़ी देर तक उसी शिला पर बैठा रहा, जिस पर वीणावती बैठी थी । फिर अचानक उठा और वह टीले के उस पार चला गया ।

टीले के उस पार बीस-पच्चीस कोस तक एक घना जंगल था । लोगों का विश्वास था कि उस जंगल में जंगली जाति के लोग निवास करते हैं और वे स्वभाव से अत्यन्त क्रूर होते हैं । भीमराज इसी जंगल में आगे बढ़ने लगा । अभी वह थोड़ी दूर ही गया था कि उसे यह कर्कश आवाज़ सुनाई दी, "कौन है रे ?" वह चौंककर वहीं रुक गया ।

दो जंगली युवक भाले चमकाते हुए उसके आगे आये और उसे धमका कर पूछा, "कौन हो तुम ? रात के वक्त जंगल में किस काम से जा रहे हो ?"

भीमराज पल भर के लिए सहम गया, फिर संभल कर बोला, "मैं बड़ी मुसीबत में फँस गया हूँ । किसी शेर के मुँह में अपने को फेंक

देने के ख्याल से इधर आया हूँ ।"

यह उत्तर सुनकर वे दोनों जंगली युवक चकित रह गये । कुछ दूर जाकर आपस में सलाह-मशविरा किया, फिर वापस भीमराज के पास आकर बोले, "मुसीबत में फँसे लोगों पर हमें दया आती है । यहाँ पर पिशाचों का एक टीला है । उस पर कई पिशाच निवास करते थे । वे हम जंगली जाति के लोगों को अनेक यातनाएँ देते थे । तब एक बौना मांत्रिक आया । उसने उन पिशाचों से हमारी रक्षा की और उन्हें भगा दिया । इस समय वह पिशाचों के टीले पर ही अपना निवास बनाये हुए है । तुम अपना संकट उसे बताओ । शायद वह तुम्हारी मदद कर सके ।"

वे जंगली युवक भीमराज को बौने मांत्रिक के पास ले गये ।

बौना मांत्रिक टीले पर एक कुटी के बाहर अलाव जलाकर उसके आगे बैठा हुआ था । उसने भीमराज को देखते ही पूछा, "बारह वर्ष बाद कोई मेरी खोज में आया है । अरे, तू कौन है रे ?"

"मामाजी, मैं बड़ी मुसीबत में फँसा हुआ हूँ । इसलिए इस आधी रात के वक्त आपकी खोज करता हुआ यहाँ आ पहुँचा हूँ ।" यह कहकर भीमराज बौने के सामने बैठ गया ।

मांत्रिक ने अलाव में से धक-धक जलती एक लकड़ी निकाली और उसे मशाल की तरह भीमराज के सामने करके उसका चेहरा परख कर देखा, पूछा, "बताओ, तुम पर कौन-सा संकट आ पड़ा है ?"

बाद वह टुकड़ा भीमराज को देकर कहा, "तुम जिस युवती के साथ विवाह करना चाहते हो, उसे यह कोयला देकर उससे कहना कि वह इसे इस तरह चबाकर निगल ले, जैसे गुड़ खाया जाता है ।"

भीमराज मांत्रिक से कुछ पूछने को हुआ, पर मांत्रिक ने अपनी कुटी के अन्दर पैर रखते हुए कहा, "मेरे जमाई, तुम व्यर्थ सवाल पूछकर मुझे तंग न करो, अब चले जाओ !"

भीमराज कोयले का टुकड़ा लेकर घर लौटा । फिर वीणावती के घर जाकर उसने उसके कमरे की खिड़की पर धीरे से दस्तक दी। वीणावती जगी हुई थी । उसने तुरन्त खिड़की खोल दी ।

भीमराज ने सारी कहानी सुनाकर कहा, "अगर वीणावती के साथ मेरी शादी नहीं हुई तो पिशाचों का यह टीला ही मेरा आवास होगा । परसों वीणावती के साथ एक दूसरा युवक शादी करनेवाला है । आप इस शादी को रोक दीजिए । वीणावती के साथ मेरा विवाह हो, इसके लिए आप किसी मंत्र या तंत्र का प्रयोग करके मेरी मदद कीजिये !"

बौने मांत्रिक ने तुरन्त धक-धक करते अंगारों पर हाथ रखा । अलाव उसी क्षण इस तरह बुझ गया, मानो उस पर ठडा पानी छिड़क दिया गया हो । उसमें काले कोयले रह गये ।

मांत्रिक ने कोयले का एक टुकड़ा निकाल कर माथे से लगाया और कोई मंत्र पढ़ा । इसके

भीमराज धीमी आवाज़ में बोला, "तुम मुझसे कुछ न पूछो ! बस इस कोयले को चबाकर निगल डालो ! देरी न करो ।" यह कहकर उसने कोयला वीणावती के हाथ में दे दिया।

वीणावती ने स्वीकृति सूचक सिर हिलाया । भीमराज सन्तुष्ट होकर अपने घर लौट आया । सवेरे वीणावती को जगाने के लिए नौकरानी आयी तो वह उसके चेहरे को देखकर चीख उठी । वीणावती की स्वर्णिम कान्ति वाली देह काले कोयले के रंग में बदल गयी थी ।

यह ख़बर कुछ ही देर में सारे गाँव में फैल गयी । दूल्हे के पक्ष के लोग यह समाचार सुनकर वीणावती को देखने आये और यह कह

कर चले गये, "कैसी विचित्र बात है ! यह लड़की हमें नहीं चाहिए। इसमें तो रंग बदलने वाले भूतों के लक्षण मौजूद हैं ।"

वीणावती के पिता को बड़ा सदमा लगा। वह निराश होकर सिर पीटने लगा। देर तक सिर ख़पाने के बाद भी उसकी समझ में नहीं आया कि ऐसा क्यों हुआ है ? अब तो वह भारी दहेज का लोभ भी दिखाये तो भी कोई युवक उसकी लड़की के साथ शादी करने को तैयार न होगा ।

इसके बाद उसने कचहरी जा रहे भीमराज को रोक कर कहा, "बेटा, मैं जानता हूँ कि तुम वीणा पर जान देते हो। किसी ने उस पर मंत्र फूँक दिया है। तुम मेरी गलती के लिए मुझे माफ़ कर दो। कल सवेरे शादी का मुहूर्त है। तुम इसी लग्न में मेरी बेटी के साथ विवाह करके मेरी इज्जत बचाओ !"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं अवश्य आपके सम्मान की रक्षा करूँगा।" भीमराज ने जवाब दिया ।

वीणावती दरवाज़े से लगी ये सब बातें सुन रही थी। रोकर बोली, "भीमराज, मेरी जैसी कुरूपा तुम्हारे योग्य नहीं है ।"

भीमराज मुस्करा कर चुप रह गया। शाम होते ही वह जंगल की तरफ़ चल पड़ा और रात में बौने मांत्रिक के पास पहुँचा ।

भीमराज के आते ही मांत्रिक ने उत्साहभरी आवाज़ में पूछा, "दामाद भाई, क्या हमारी योजना सफल हो गयी ?"
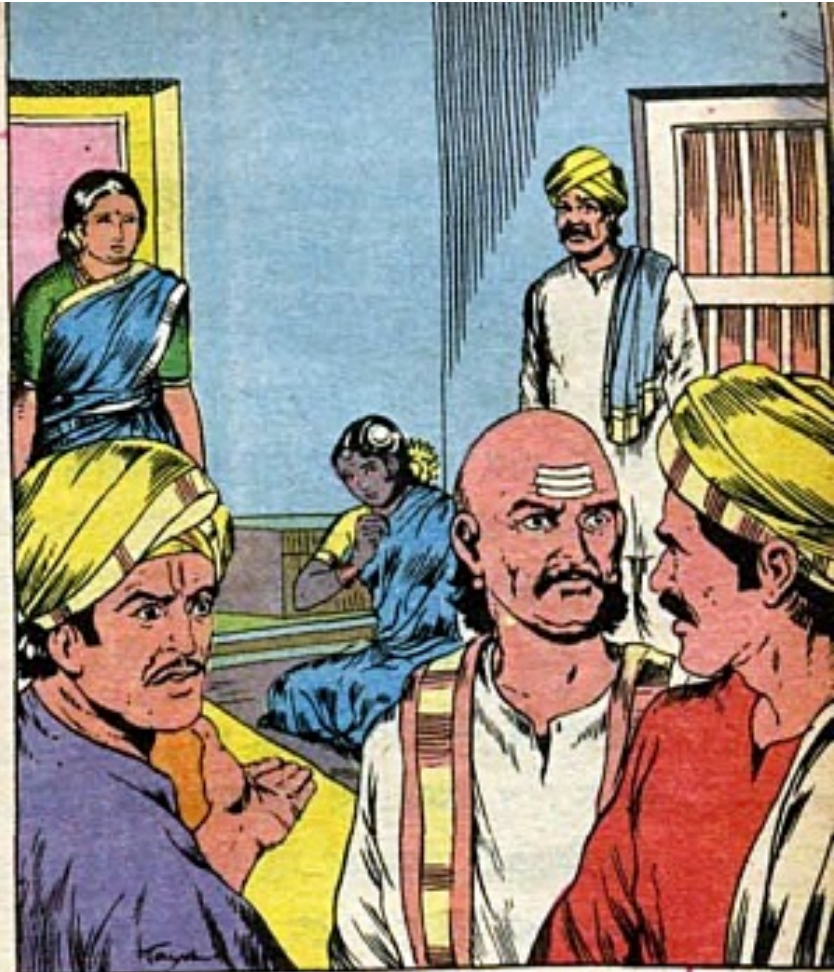
"और नहीं तो क्या ? वरपक्ष के लोग घबरा कर भाग गये हैं। कल वीणावती के साथ मेरी शादी होनेवाली है। कल आपने जो मंत्र फूँका है, अब उसका निवारक कोई मंत्र बता दें तो मैं खुशी-खुशी आपका आशीर्वाद लेकर चला जाऊँगा ।" भीमराज ने कहा ।

"अपने ही मंत्र को तोड़ दूँ, ऐसी कोई निवारक शक्ति मेरे पास नहीं है।" झट मांत्रिक बोला ।

भीमराज ने चकित होकर कुछ खिन्न स्वर में पूछा, "तब क्या वीणावती जीवन भर कोयले के रंग की होकर रह जांयेगी ?"

"तो क्या हुआ ? तुम तो उससे प्रेम करते

हो न ? वह तो बदली नहीं, सिर्फ़ उसका रंग बदला है। वह और उसका हृदय वही है। क्या वह कुरूपा होगयी, इसलिए तुम उससे शादी करने में संकोच कर रहे हो ? फिर तो अच्छा होगा कि तुम किसी सुन्दर लड़की को ढूँढ़कर उसके साथ शादी कर लो !" मांत्रिक ने रहस्यभरी आवाज़ में कहा ।

मांत्रिक की बात सुनकर भीमराज को बहुत दुख हुआ। वह बोला, "मामाजी, ऐसा मत सोचिये कि वीणावती कुरूपा बन गयी तो मैं उसके साथ विवाह नहीं करूँगा। बात यह है कि वीणावती अपने को मेरे योग्य न मानकर विलाप कर रही है। आप मंत्र फूँक कर एक कोयला मुझे भी दे दें ! मैं भी उसे खा लूँगा। तब हम दोनों एक जैसे हो जायेंगे और वीणा को अपने अयोग्य होने का दुख मिट जायेगा।"

"अरे मेरे भाई, तुम्हारा प्रेम सचमुच श्रेष्ठ है। मैं तो तुम्हारी परीक्षा ले रहा था।" यह कह कर बौने मांत्रिक ने टोकरी में से एक अमरूद निकाला और उसे मंत्र से फूँककर भीमराज के हाथ में दे दिया। फिर बोला, "इस फल को अपनी होनेवाली पत्नी वीणावती को खिला देना। उसे पहले जैसा रंग प्राप्त हो जायेगा।"

भीमराज फल लेकर बोला, "हम दोनों शादी के बाद एक दिन यहाँ आपका आशीर्वाद लेने आयेंगे। मामाजी, हम आपका यह उपकार कभी नहीं भूलेंगे।"

यह बात सुनकर बौना मांत्रिक कठोर स्वर में बोला, "तुम मुझे और मेरे उपकार को भूल जाओ ! कभी किसी से मेरे बारे में कुछ मत कहना ! और तुम फिर कभी मेरे पास आना भी नहीं। इस जंगल के भोले-भाले लोगों के बीच मुझे शांति से जीने देना। अब तुम जाओ !"

भीमराज लौट आया। उसने मांत्रिक से प्राप्त वह अमरूद वीणावती को दिया। उस फल को खाकर उसकी देह की वर्ण-कान्ति सुवर्णिम शोभा से पूर्ण हो गयी।

दूसरे दिन विवाह-वेदिका पर भीमराज के पास बैठी अत्यन्त सुन्दर वीणावती को देखकर सारा गाँव अचरज से भर गया।

शिक्षा का भवन

महाराजा सुरेंद्रराज के पुत्र का नाम था नरेंद्रराज। राजा ने अपने पुत्र को शिक्षाभ्यास के लिए महात्मा श्रीकर्ण के गुरुकुल में भेजा। एक वर्ष के बाद राजा सुरेंद्रराज अपने पुत्र को देखने के लिए गुरुकुल गये। उन्होंने अपने पुत्र के विद्याभ्यास के बारे में जानकारी प्राप्त की। वे नरेंद्र की प्रगति से सन्तुष्ट न हो सके।

राजा ने श्रीकर्ण के सामने अपने हृदय का असन्तोष प्रकट कर कहा, "आचार्यवर, क्या आप राजकुमार की शिक्षा को शीघ्र पूरा कराने का प्रबन्ध कर सकते हैं? नरेंद्र की शिक्षा चार वर्ष के अन्दर समाप्त हो जाये तो बड़ा उत्तम होगा।"

श्रीकर्ण एक नये विद्याभवन का निर्माण करवा रहे थे। गुरुकुल के सामने ईंट, गारे, लकड़ी आदि का ढेर लगा हुआ था। उन्होंने राजा को यह सारी सामग्री दिखा कर कहा, "महाराज, इस कच्चे माल का उपयोग करके एक सुन्दर और मज़बूत भवन खड़ा करने में कम से कम एक वर्ष का समय लगेगा। पर एक झोंपड़ी बनाने के लिए चार-पाँच दिन पर्याप्त हो सकते हैं। हमें क्या चाहिए— भवन अथवा झोंपड़ी, यह निर्णय अगर हम पहले कर लें तो अच्छा रहेगा।"

महात्मा श्रीकर्ण की बात सुनकर राजा को अपनी भूल का ज्ञान हो गया। शिक्षा में जल्दबाजी एक कच्ची-कुरूप झोंपड़ी का ही निर्माण कर सकती है, सुन्दर, मज़बूत भवन का नहीं।

सुरेंद्रराज ने नम्र स्वर में श्रीकर्ण से कहा, "आप अन्य विद्यार्थियों की भाँति ही नरेंद्र को भी शिक्षा दें। मुझे सुन्दर और मज़बूत भवन की ही आवश्यकता है।" और अपनी राजधानी लौट गये।

चाणक्य की कथा

गतांक से आगे

चाणक्य और चंद्रगुप्त ने नन्द के राजभवन पर अधिकार कर लिया और उसकी सारी सम्पत्ति का बँटवारा कर लिया ।

नन्द के भवन में एक दासी थी । वह विषकन्या थी । पर्वतक ने उस दासी की माँग की । चाणक्य ने स्वीकार कर लिया । पर्वतक ने अग्नि को साक्षी बनाकर उसका पाणिग्रहण किया । तब उसके हाथ के पसीने से उसका विष पर्वतक के शरीर में प्रवेश कर गया ।

पर्वतक चीख कर नीचे गिर पड़ा । उसने वैद्यों को बुलवाने का अनुरोध किया । चंद्रगुप्त ने अपने सेवकों को वैद्यों को लाने का निर्देश दिया, लेकिन चाणक्य ने निषेध कर दिया ।

ठीक समय अपनी शर्त के अनुसार आधा राज्य प्राप्त करनेवाला पर्वतक बिना किसी चिकित्सा के प्राण गँवा बैठा । इस तरह चाणक्य की दूरदर्शिता के कारण अनायास ही पर्वतक का राज्य भी चंद्रगुप्त को प्राप्त हो गया ।

इस प्रकार नन्द के शासन का अन्त होगया । लेकिन नन्द के अनुचर अनेक प्रकार से अराजकता फैलाकर शांति भंग करने लगे । तभी वे चाणक्य की दृष्टि एक जुलाहे पर पड़ी, जिसमें अराजक तत्वों पर नियंत्रण करने की क्षमता थी ।

वह जुलाहा जहाँ भी दीमकों की बांबी देखता, उन्हें आग से जला देता । चाणक्य ने उसे अधिकार दिया और उसने बहुत कम समय में अराजकता फैलानेवाले तत्वों का दमन कर दिया । चाणक्य का विश्वास सच्चा प्रमाणित हुआ ।

चंद्रगुप्त को राज्य तो मिल गया, लेकिन खज़ाना ख़ाली था । इस कमी को पूरा करने के लिए चाणक्य ने नक़ली पांसों से जुआ खेलकर सोना दाँव पर लगवाया और इस तरह थोड़ा बहुत सोना कोष में पहुँचा । पर इस तरह राजकोष को भरना संभव नहीं था । तब

चाणक्य ने एक युक्ति सोची ।

उसने नगर के सभी धनिकों को दावत का निमंत्रण दिया और उन्हें खाना खाने के बाद खूब मद्यपान कराया । सब लोग नशे में धुत्त होकर अनाप-शनाप बकने लगे । एक ने इस आशय का एक श्लोक सुनाया कि राजा को अपने हाथ का खिलौना किस प्रकार बनाया जा सकता है !

सब लोग अपने-अपने धन-वैभव का बखान करने लगे । यहाँ तक कि उन्होंने अपने छिपे हुए स्वर्ण-भंडारों का भेद भी खोल दिया । चाणक्य तो यही चाहता था । उसने उनके ख़ज़ाने लूटकर राजकोष को पूरा भर दिया ।

एक बार की घटना है, चंद्रगुप्त के राज्य में भयंकर अकाल पड़ा । राज्य के जैन भिक्षुओं को भिक्षा तक मिलना दुर्लभ होगया । उनके आचार्य सुस्थित ने अपने शिष्यों को सलाह दी कि वे नगर छोड़कर किसी और स्थान पर चले जायें और वहाँ भिक्षा ग्रहण करते हुए अपना जीवन-यापन करें ।

लगभग सभी जैन भिक्षुक नगर त्याग कर चले गये । लेकिन दो शिष्य अपने गुरु को छोड़कर नहीं जाना चाहते थे । इन दोनों ने भोजन के लिए एक मार्ग निकाला । ये दोनों एक प्रकार के अंजन का प्रयोग जानते थे । उसे जो भी आँख पर लगा ले, वह अदृश्य हो जाता था।

वे दोनों अंजन को अपनी आँखों में लगा लेते और अदृश्य होकर राजभवन में जाते । जब चंद्रगुप्त भोजन के लिए बैठता तो ये भी थाली के आगे बैठ जाते और उसके साथ भोजन करके चल देते ।

इस प्रकार कुछ समय बीत गया । चाणक्य ने लक्ष्य किया कि चंद्रगुप्त दिन-प्रतिदिन दुर्बल होता जा रहा है । उसने चंद्रगुप्त से इसका कारण पूछा ।

चंद्रगुप्त ने कहा, "मैं भी इसका कारण नहीं जानता । रसोइये प्रतिदिन मुझे यथावत् भोजन परोस रहे हैं । मुझे इतना ही मालूम है कि वह भोजन पूरी तरह मेरे पेट में नहीं जाता । यह बात सही है ।"

चाणक्य ने समझ लिया कि कोई अगोचर रूप में आकर चंद्रगुप्त का भोजन चुरा लेता है। इस बात का पता लगाने के लिए चाणक्य ने

चंद्रगुप्त के भोजन-कक्ष में चारों तरफ़ चिकना चूर्ण छिड़कवा दिया। चंद्रगुप्त के भोजन करने के बाद उस चूर्ण में दो जोड़ी पैरों के चिन्ह दिखाई दिये।

अगले दिन जब चंद्रगुप्त भोजन करने बैठा, तब चाणक्य ने भोजनालय में तीखा धुआँ करवा दिया। उसके कारण सबकी आँखें जलने लगीं और आँखों से पानी बहने लगा। पानी के कारण जैन भिक्षुओं की आँखों का अंजन धुल गया और वे सबके सामने प्रत्यक्ष हो गये। उन्हें देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ और सब क्रुद्ध हो उठे। पर चाणक्य ने उन जैन साधुओं को प्रणाम करके उन्हें विदा कर दिया।

चंद्रगुप्त को इस बात का बहुत दुख था कि उसने राजा होकर भी दूसरों की जूठन खायी। पर चाणक्य ने उसे यह कहकर समझा दिया कि यह तो चिंता करने की कोई बात नही हैं। उसे जैन भिक्षुओं को भिक्षा देने का पुण्य प्राप्त होगा। फिर भी चाणक्य ने सुस्थिताचार्य के पास सन्देश भेजकर उनके शिष्यों के प्रति आक्षेप प्रकट किया।

जैन आचार्य ने चाणक्य को यह उत्तर लिखकर भेजा, "गलती तो आपके नागरिकों की है। अगर वे हमारे भिक्षुओं को भोजन देते तो ऐसी घटना न घटती।" तब से पाटलिपुत्र में जैन-भिक्षुओं की भिक्षा का उचित प्रबन्ध किया गया।

चंद्रगुप्त पर कोई ईर्ष्यावश विष का प्रयोग न कर बैठे, इस आशंका से चाणक्य ने चंद्रगुप्त के आहार में यत्किंचित् विष का अंश मिलाने का प्रबन्ध कर दिया, ताकि उसमें विष को पचाने की शक्ति पैदा हो जाये। विष की मात्रा को क्रमशः बढ़ाया गया और एक दिन ऐसी स्थिति आगयी कि चंद्रगुप्त पर उस विष का प्रभाव बिलकुल भी न रहा। पर यह बात चंद्रगुप्त नहीं जानता था।

चंद्रगुप्त की पत्नी दुर्धरा गर्भवती थी। उसने एक दिन चंद्रगुप्त के थाल के पास बैठकर थोड़ा सा भोजन लेकर खा लिया।

खाना विष से भरा हुआ था। दुर्धरा ने तुरन्त प्राण त्याग दिये। उसी क्षण चाणक्य वहाँ पहुँचा और दुर्धरा के गर्भ को चीर कर उसके शिशु को

बाहर निकाला। इस बीच विष की एक बूंद शिशु के भीतर प्रवेश कर गयी थी। इस कारण उस शिशु को बिन्दुसार नाम दिया गया।

चंद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् चाणक्य ने स्वयं बिन्दुसार का राज्याभिषेक किया। लेकिन वह स्वयं अधिक समय तक बिन्दुसार के मंत्रि-पद पर नहीं रहा। चाणक्य ने सुबन्धु नाम के एक व्यक्ति को आश्रय देकर उसे राजतंत्र में निष्णात किया।

सुबन्धु के अन्दर मंत्रि-पद पाने की आकांक्षा जोर पकड़ने लगी। उसने राजा बिन्दुसार को चाणक्य के विरुद्ध भड़काना शुरू कर दिया। उसने राजा को समझाया कि चाणक्य विश्वास के योग्य नहीं है, उसने माता दुर्धरा का गर्भ चीर डाला था। बिन्दुसार ने पूछताछ की तो उसे मालूम होगया कि यह समाचार सत्य है। चाणक्य के लिए उसके मन में द्वेष पैदा होगया।

सुबन्धु के प्रभाव को बढ़ता देख कर चाणक्य ने वैराग्य का जीवन स्वीकार कर लिया। क्यों कि वह राज्य में कलह पैदा नहीं करना चाहता था लेकिन उसने अपने इस प्रतिद्वन्दी को क्षमा नहीं किया। सुबन्धु के पतन के लिए उसने एक प्रयोग किया। उसने भोज पत्रों पर कुछ लिखा और उन्हें सुगन्धित द्रव्यों के साथ एक पेटिका में रखकर उस पेटिका को अपने सन्दूक में बन्द कर उस पर ताला लगवा दिया। इसके बाद उसने अपनी सारी संपत्ति गरीबों एवं अनाथों में दान कर दी और स्वयं नगर के बाहर कूड़े के ढेर पर बैठकर प्रायोपवेश किया।
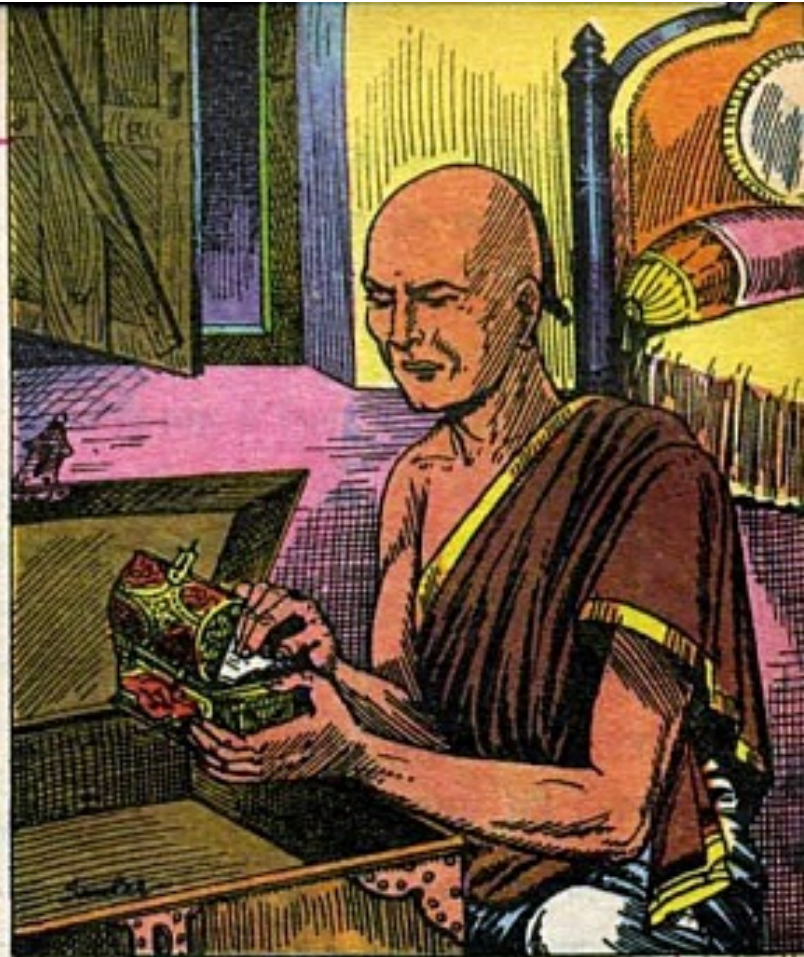
इस बीच बिन्दुसार को चाणक्य की वास्तविकता मालूम हुई। वह बहुत दुखी हुआ और चाणक्य को लाने के लिए नगर के बाहर गया। चाणक्य को देखकर उसने निवेदन किया, "महात्मा, आप कृपया पुनः मंत्रि-पद स्वीकार करें!"

पर चाणक्य ने अपना संकल्प नहीं छोड़ा। अपने प्रयत्न को विफल जान बिन्दुसार लौट गया और अपना सारा क्रोध सुबन्धु पर उतारा। सुबन्धु ने राजा से निवेदन किया, "महाराज, मैं निर्दोष हूँ। आप चिन्ता न करें। मैं अवश्य ही चाणक्य का मन बदल डालूँगा।"

सुबन्धु चाणक्य के पास पहुँचा। उसने बहुत अनुनय-विनय की और इसी बीच भस्म के भीतर छिपे एक अंगारे को कूड़े के ढेर में खिसका दिया। कूड़े के ढेर ने आग पकड़ ली और चाणक्य उसकी लपटों में भस्म हो गया।

सुबन्धु के मन में पहले अधिकार की कामना थी, इसलिए चाणक्य को अपने मार्ग से हटाकर राजा पर अपना प्रभाव जमा दिया! इसके बाद उसके मन में चाणक्य की संपत्ति हड़पने की लालेसा पैदा हो गई। आखिर वह अपने इस प्रयत्न में सफल हुआ। फिर

बिन्दुसार की अनुमति लेकर सुबन्धु ने चाणक्य के व्यक्त भवन में प्रवेश किया और उसकी धन-संपत्ति की तलाशी ली। उसे चाणक्य के सन्दुक में एक पेटिका दिखाई दी। उसने उसे खोला तो झपाक से सुगन्ध का गुबार निकला। इसके बाद सुबन्धु ने भोजपत्रों को देखा। उसने सोचा, शायद इन पत्रों में चाणक्य की संपत्ति का रहस्य लिखा होगा। पर जब उसने भोजपत्रों के आलेख को पढ़ा तो वह चकित रह गया।

उन पर लिखा था— 'जिसने संन्यासी का जीवन नहीं बिताया है, यदि वह इन सुगंधित द्रव्यों को सूंघ लेगा तो उसकी तत्काल मृत्यु हो जायेगी।' इस कथन की सत्यता की परीक्षा लेने के लिए सुबन्धु ने एक मनुष्य को वह द्रव्य सुँघवाया। उसने उसी क्षण दम तोड़ दिया।

इसके बाद उस पेटिका के द्रव्य-प्रभाव को नष्ट करने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये, पर कोई परिणाम न निकला। सुबन्धु ने सोचा कि उसकी भी यही हालत होगी। उसने अपने मंत्रि-पद को त्याग कर जैन गुरु से संन्यास ग्रहण कर लिया।

अन्य संन्यासी जानते थे कि सुबन्धु ने हृदय से संन्यास नहीं लिया है, इसलिए सब उसका अनादर करते थे।

चाणक्य के प्रति विश्वासघात और षडयंत्र करके सुबन्धु सुखी नहीं रह सका। चाणक्य भस्म अवश्य हो गया, पर उसने अपने प्रतिद्वन्दी से पूरा प्रतिशोध लिया।

तास्मानिया के क्रूर जन्तु

आस्ट्रेलिया की आग्नेय दिशा में स्थित तास्मानिया द्वीप अत्यन्त प्रशान्त वातावरण के लिए प्रसिद्ध है। लेकिन इसी प्रशान्त वातावरण में तास्मानिया भेड़िया, तास्मानिया डेविल, टाइगर कैट जैसे ख़ूँख्वार जानवरों का निवास है।

इन जानवरों में तास्मानिया भेड़िया अपेक्षाकृत आकार में बड़ा है। देखने में वह साधारण लगता है। केवल उसकी आकृति भेड़िये जैसी है, पर देखने में वह उससे छोटा लगता है। उसके बदन पर धारियां होती हैं। मादा भेड़िया के स्तनों के चारों तरफ़ थैली की आकार की चर्म होती है, जिसमें वह अपने बच्चे को ढोती है। बच्चे पैदा होने पर उस थैली में पहुँच जाते हैं और बड़े होने तक वहीं रहते हैं। जब बच्चा छोटा होता है तो माता का थन सदा उसके मुँह में बना रहता है। माता अपने बच्चों की भूख केप्रति बुहत जागरूक होती है और जब-तब उसे दूध पिलाती रहती है। ये पहाड़ की गुफाओं में निवास करते हैं और रात के समय घूमने के लिए बाहर निकल पड़ते हैं। ये एक ज़माने में आस्ट्रेलिया के सम्पूर्ण भूखण्ड में फैले हुए थे। पर इस समय ये केवल तास्मानिया में ही पाये जाते हैं।

थन के चारों तरफ़ थैली की तरह चर्मवाला एक और मुख्य जानवर तास्मानिया डेविल है। यह देखने में जलशुनक जैसा लगता है। बड़ा सिर और चौड़ी थूथनवाला यह जानवर बहुत शक्तिशाली होता है। बड़े एवं लंबे कान, सारे बदन में रोम, गरदन एवं पीठ पर सफ़ेद दाग़ तथा काले एवं बैंगनी रंग वाला यह जानवर रात के समय ही आहार की खोज में निकलता है। सूरज की रोशनी में इसकी आंखें देख नहीं सकतीं, इसलिए यह दिन भर अँधेरी गुफाओं एवं सुरंगों में सिकुड़ा हुआ सोता रहता है। तास्मानिया डेविल अत्यन्त ख़ूंख्वार जानवर हैं, फिर भी सदा उल्लासपूर्वक उछल-ते-कूदते रहते हैं। इसी कारण कुछ लोग इनके बच्चों को पालते हैं।

तास्मानिया एवं आस्ट्रेलिया में पाया जानेवाला एक और क्रूर जन्तु टाइगर कैट है। ये जानवर साधारण बिल्लियों की तरह होते हैं। इनके दांत भी बिल्लियों की तरह होते हैं पर उतने मज़बूत नहीं होते। इनके शरीर का रंग बैंगनी होता है और उस पर सफ़ेद धब्बे होते हैं। छोटे कान, लंबी पूँछ और सारे बदन पर रोम होते हैं।

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ मई १९८६ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी ।

M. Natarajan

M. Natarajan

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ मार्च १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए । ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा । ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें : चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

जनवरी के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : माँ को है मेरी फ़िकर !

द्वितीय फोटो : तब मुझको किसका डर ! !

प्रेषक : माला जोशी, ५, मुरलीधर क्वार्टर्स, हुसेनगंज, लखनऊ - २२६ ००१

'क्या आप जानते हैं ?' के उत्तर

१. कमाण्डर पियरी २. अमुंड सेन ३. एबेल टास्मन ४. सर फ्रांसिस ड्रेक ५. विक्टोरिया प्रपात ।

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

Statement about ownership of CHANDAMAMA (Hindi)
Rule 8 (Form VI), Newspapers (Central) Rules, 1956

1. Place of Publication	... 'CHANDAMAMA BUILDINGS' 188 N.S.K. Salai Vadapalani, Madras-600 026
2. Periodicity of Publication	... MONTHLY ... 1st of each calendar month
3 Printer's Name	... B.V. REDDI
Nationality	... INDIAN
Address	... Prasad Process Private Limited 188, N.S.K. Salai Vadapalani, Madras-600 026
4. Publisher's Name	... B. VISWANATHA REDDI
Nationality	... INDIAN
Address	... Chandamama Publications 188 N.S.K. Salai Vadapalani, Madras-600 026
5. Editor's Name	... B. NAGI REDDI
Nationality	... INDIAN
Address	... Chandamama Buildings' 188 N.S.K. Salai Vadapalani, Madras-600 026
6. Name and Address of individuals who own the paper	... CHANDAMAMA PUBLICATIONS PARTNERS 1. B. VENKATRAMA REDDY 2. B.V. SANJAY REDDY 3. B.V. NARESH REDDY 4. B. PADMAVATHI 5. B. VASUNDHARA

I, B. Viswanatha Reddi, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

B. VISWANATHA REDDI
Signature of the Publisher

1st March 1986

"जिस दिन मुझे अपना पहला मुंहासा दिखाई दिया...
क्लिअरेसिल का मुझे उसी दिन पता चला."

वो दिन मुझे आज भी याद है. दीदी की शादी को सिर्फ़ एक हफ़्ता रह गया था और मेरे मन में लड्डू फूट रहे थे. बस, शीशे के सामने खड़ी मैं अपने नये कपड़े पहन कर देख रही थी, कि मैं डर से कांप गई... मुझे अपने गाल पर कुछ दिखाई पड़ा ... एक मुंहासा. मेरा पहला पहला मुंहासा. मैं घबरा गई ... ये कैसी मुसीबत नई! नहीं .... अभी नहीं!

तभी दीदी अंदर आईं. उन्होंने मेरा चेहरा देखा और कहा, "अरे पगली. इस उम्र में तो मुंहासे सभी को निकलते हैं. मुझे भी निकले थे और मैंने क्लिअरेसिल लगाई. तुम भी क्लिअरेसिल लगाओ." मैंने ऐसा ही किया. और सचमुच क्लिअरेसिल ने असर दिखाया.

अब मैं क्या बताऊं आपसे कि दीदी की शादी में मुझे कितना मज़ा आया.

क्लिअरेसिल कील-मुंहासे साफ़ करे और उन्हें फैलने से रोके.

OBM/5687/HN

क्लिअरेसिल

कील-मुंहासों का स्पेशलिस्ट, जो सचमुच असरदार है

CHANDAMAMA (Hindi) M... 1986 Regd. No. M. ...

पारले ग्लुको बिस्किट
अब, प्यार से पुकारो 'पारले-G'!

'पारले-G' ही क्यों?

जिसने अपनेपन का नाता जोड़ लिया, उसे प्यार के नन्हे नाम से ही तो पुकारना चाहेगा हर कोई. फिर चाहे वह पारले ग्लुको बिस्किट ही क्यों न हो. तो बस, पारले ग्लुको को जीभर के पुकारो 'पारले-G' और जीभर के खाओ उनके गुण - जीभर उल्लास - जो बढ़िया दूध, गेहूँ और शक्कर के मधुर मिश्रण से आए, जीभर शक्ति - जो शरीर के विकास में सहायक-ग्लुको स्वाद, जीभर स्वाद - जो जीभरकर जीभ पर बस रहे, जी को लुभाए.

PARLE
Gluco

स्वाद में निराले, शक्ति से भरपूर

भारत के सबसे ज़्यादा बिकनेवाले बिस्किट

everest/85/PP/430/HN